॥ श्रीहरिः ॥

कलेजेके अक्षर

[पढ़ो, समझो और करो,

भाग २]



प्रकाशक—

मोतीलाल जालान

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०२५ से २०३२ तक		७०,०००
सं० २०३४	छठा संस्करण	२५,०००
सं० २०३५	सातवाँ संस्करण	३५,०००
	कुल	१,३०,०००

मूल्य पचास पैसे

"भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये
रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित"

मुद्रक—

उमा प्रकाशन लिमिटेड, ताल कटोरा रोड, लखनऊ—२२६०११

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

सम्पादकका निवेदन

'कल्याण'में 'पढ़ो, समझो और करो' शीर्षकमें जो जीवनमें सात्त्विकता ला देनेवाली, जीवनको उच्चस्तरपर चढ़ा देनेवाली, मानवताका सच्चा स्वरूप बतलाकर उसका विकास करनेवाली एवं भगवान्की ओर लगानेवाली सच्ची घटनाएँ छपती हैं, वे सभी पाठकोंके लिये बड़े ही आकर्षणकी वस्तु हैं। उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करनेके लिये हमारे पास सैकड़ों पत्र आ चुके। अब भगवत्कृपासे उन्हें प्रकाशित करनेकी व्यवस्था हो पायी है। अबतक प्रकाशित घटनाएँ कई भागोंमें छोटी-छोटी पुस्तिकाओंके रूपमें विभिन्न नामोंसे प्रकाशित होंगी। इनका पहला भाग तो 'पढ़ो, समझो और करो' नामसे ही कई वर्ष पूर्व छपा हुआ था। अब यह दूसरी पुस्तिका 'कलेजेके अक्षर' नामसे प्रकाशित की जा रही है। इस पुस्तिकामें 'कलेजेके अक्षर' शीर्षक एक घटना छपी है, उसीके अनुसार यह नाम दिया गया है।

इस शीर्षकके लिये घटनाएँ लिखकर भेजनेवाले महानुभावोंके हम कृतज्ञ हैं और निवेदन है कि वे तथा अन्यान्य सज्जन मानवताको ऊँची उठानेवाली सच्ची घटनाएँ लिखकर 'कल्याण' में प्रकाशनार्थ भेजते रहें। चमत्कारीकी घटनाएँ तो बहुत आती हैं—पर आचरण तथा चरित्रको उज्ज्वल बनानेवाली घटनाएँ विशेषरूपसे आनी चाहिये। इस 'शीर्षक'में बहुत-सी घटनाएँ हमारे अत्यन्त निकट-

के प्रेमी ब्रह्मलीन परम संत स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीके 'सस्तुं साहित्यवर्धक' कार्यालय, अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती मासिक पत्र 'अखण्ड आनन्द' से लेकर छापी जाती हैं। इसके लिये हम उसके सम्पादक महोदय तथा लेखकोंके कृतज्ञ हैं।

पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस पुस्तिकामें प्रकाशित आदर्श घटनाओंका अध्ययन करके लाभ उठावें, उनसे जीवनमें शिक्षा ग्रहण करें और भविष्यमें प्रकाशित होनेवाले अगले भागोंसे भी लाभान्वित हों। स्वयं लाभ उठावें और पुस्तिकाओंका प्रचार करके दूसरोंको भी लाभ पहुँचानेका प्रयत्न करें। यह जनताकी बड़ी सेवा होगी।

उपहारमें देने तथा विवाह-शादियोंमें बांटनेके लिये भी यह साहित्य बहुत उपयोगी है।

हनुमानप्रसाद पोद्दार
सम्पादक



ॐ

विषय-सूची



॥ श्रीहरिः ॥

कलेजेके अक्षर

[पढ़ो, समझो और करो, भाग २]

'हरिःशरणम्' मन्त्रसे भीषण रोग-नाश

कलकत्तेकी कुछ समय पहलेकी घटना है। उस समय कलकत्तेमें प्रतिवर्ष प्लेगका प्रसार होता था और उससे हजारों मनुष्य मरते थे। कलकत्तेके लोग प्लेगसे बचनेके लिये बाहर चले जाते थे। बड़ी परेशानी रहती थी। जगह-जगह अखण्ड कीर्तनका आयोजन होता था। उन्हीं दिनों एक बार एक बड़े शिक्षित धनी बाबूको प्लेग हो गया। वे धनके साथ ही संस्कृतज्ञान और भगवान्‌की भक्तिसे भी सम्पन्न थे। अपने घरमें अकेले थे। स्त्री-पुत्रादि कोई न थे। नौकर-चाकर आदि सब काम करते थे। एक बहुत बड़े अनुभवी प्रख्यात डाक्टर देखने आये। बहुत जोरका ज्वर था। दोनों ओर गिल्टियाँ थीं। सेनिपात आरम्भ हो गया था। डाक्टर कह गये थे कि रात्रिको किसी समय उनका प्राणान्त हो जायगा। उक्त सज्जनने अपने विश्वासी सेवकको बुलाकर गङ्गाजलसे गमछा भिगवाया और उससे सारा बदन पोंछवा लिया। कपड़े बदल लिये, भगवान् श्रीकृष्णका एक चित्र सामने रखवा लिया और तीनों ओर तकिये लगाकर वे बैठ गये। नौकरसे कह दिया कि 'बाहरसे किवाड़ बंद कर दो और

तुम बाहर सो जाओ। या तो मैं खुलवाऊँ तब किवाड़ खोलना। मैं न खुलवाऊँ तो सूर्योदय होनेपर तुम खोल लेना। मर गया हो तो अन्त्येष्टि-संस्कारकी व्यवस्था सब परिवारवालोंको समाचार देकर करा देना।' नौकरने किवाड़ बंद कर दिये और बाहर बैठकर वह प्रातःकालकी प्रतीक्षा करने लगा।

प्रातःकाल सूर्योदयसे दो घंटे पूर्व लगभग चार बजे अंदरसे आवाज आयी। नौकरने किवाड़ खोले। मालिकने कहा—'गङ्गाजी-पर जाकर सौ ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे आओ और रसोइयोंको बुलाकर बढ़िया रसोई बनवाओ। दस बजेसे पूर्व ही ब्राह्मण-भोजन करवाना है।' उस समय उनका ज्वर उतर चुका था। गिल्टियाँ बैठ गयी थीं। कहीं कोई दर्द न था।

नौकरने आज्ञानुसार सारी व्यवस्था कर दी। ब्राह्मण-भोजन हो गया। उधर डाक्टर महोदयको पता लगानेपर जब ज्ञात हुआ कि रोगी अभी जीवित है, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने निर्णयपर उनको पूरा विश्वास था। ऐसा रोगी दो-तीन पहरसे अधिक जी नहीं सकता, यह उनका निश्चय था। वे इनसे बहुत प्रेम करते थे, अतएव स्वयं देखने आये। आकर साश्चर्य देखते हैं कि विधिवत स्नान-संध्या किये हुए उक्त सज्जन पट्टवस्त्र पहने आसनपर बैठे हैं। ब्राह्मण-भोजनका यज्ञशेष चौकीपर चाँदीकी थालीमें परोसा हुआ है और वे स्वाभाविक रूपमें उसे पा रहे हैं। डाक्टर महोदयने पूछा—'बाबू! यह सब किसकी सम्मतिसे खा रहे हैं?' बाबूने कहा—'जिनकी दवासे प्लेग छूमन्तर हो गया, उन्हींकी आज्ञासे प्रसाद पा रहा हूं।' निपुण डाक्टरको यहाँ भी

राम हो गया। उन्होंने समझा कि बाबू संनिपातमें यह सब कर रहे हैं। वे जाते समय सेवकोंसे सावधान रहनेके लिये कह गये।

पर बाबू तो रोगमुक्त हो चुके थे। तीन-चार दिनों बाद डाक्टर साहबने आकर बाबूसे पूछा—'आपने किस चिकित्सकसे क्या दवा ली, यह बताइये।' बाबू डाक्टर महोदयको ऊपर उसी कमरेमें ले गये, जिसमें वे उस दिन थे। वहाँ डाक्टर साहबको कुर्सीपर बैठाकर वे पलंगपर बैठ गये और कहने लगे—'डाक्टर महोदय! आप उस दिन कह ही गये थे कि रातको प्राणान्त हो जायगा। आपके जानेके पश्चात् मुझको श्रीमद्भागवतके माहात्म्यका वह प्रसंग याद आ गया, जिसमें श्रीनारदजीने सनकादिसे कहा है कि आप इसीसे चिरजीवी बालक बने हुए हैं कि आप निरन्तर 'हरिःशरणम्' मन्त्रका जप करते रहते हैं। मैंने सोचा, प्राणान्त तो होना ही है, मैं भी भगवान्‌के शरण होकर 'हरिःशरणम्' मन्त्रका जप क्यों न करूँ—सम्भव है, सनकादिको नित्य-बालक रखनेवाले इस मन्त्रसे मेरे प्राण न जायँ और यदि प्राण गये भी तो भगवान्‌का स्मरण करते हुए ही जायँगे। दोनों ही प्रकारसे लाभ है। यह सोचकर मैंने गङ्गाजलसे शरीर शुद्ध करके शुद्ध रेशमी वस्त्र पहन लिये और भगवान् श्रीकृष्णके चित्रको सामने रखकर 'हरिःशरणम्' मन्त्रका जप करने लगा। कुछ ही समयमें मन तन्मय हो गया। मुझे बाहरकी सुधि नहीं रही! भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान होने लगा। जब बाह्य चेतना हुई, तब देखा कि शरीर हल्का हो गया है, ज्वर वही है, गाँठ बैठ गयी हैं, पूर्ण स्वस्थता आ गयी है। उस समय चार बजे थे। तब मैंने ब्राह्मण-भोजनकी व्यवस्था करायी।

आप पधारे थे, उस समय सब ब्राह्मण भोजन कर चुके थे और
भगवान्‌का प्रसाद पा रहा था।'

'हरिःशरणम्' मन्त्ररूपी औषधसे भयानक प्लेगका तुरन्त ह
नाश हो गया और मरणासन्न रोगी स्वस्थ हो गया। इस प्रत्यक्ष
चमत्कारको देखकर डाक्टर चकित हो गये।



अनोखी उदारता

कई वर्षों पूर्वकी कलकत्तेकी घटना है। शेयर बाजारके एक प्रमुख व्यापारी फर्मके तीस हजारके शेयर चोरी हो गये। पता लगनेपर पुलिसमें रिपोर्ट दे दी गयी और कम्पनीको लिख दिया गया कि 'हमारे अमुक संख्याके शेयर खो गये हैं। अतः नाम-परिवर्तनके लिये कम्पनीमें आयें तो नाम-परिवर्तन न करके हमें सूचना दें।'

कुछ दिनों बाद नाम-परिवर्तनके लिये शेयर कम्पनीमें आये। कम्पनीने सूचना दी। पता लगाया गया कि किस-किसके हाथोंसे होते हुए शेयर कम्पनीमें आये हैं और सबसे पहले कहाँसे चले हैं। खोज करनेपर पता लगा कि सबसे पहले उस व्यापारी फर्मके रोकड़ियेके द्वारा ही शेयर गये हैं। फर्मके स्वामीको सूचना दी गयी। उन्होंने पुलिसको खबर देने या रोकड़िये को बुलाकर डाँटनेके बदले तुरंत कम्पनीको पत्र लिखवा दिया कि 'हमारे शेयरोंका पता लग गया है। आप नाम-परिवर्तन कर दें।' और पुलिसको शेयर मिल जानेकी खबर भेजदी गयी।

व्यापारी महोदयके प्रधान मैनेजरने कहा--'बाबूजी! उसे पकड़वाइयेगा नहीं।' वे बोले—'तीस हजार रुपयोंके लिये एक गृहस्थका जीवन बर्बाद कर दें? उसके घरमें दस आदमी हैं, वे क्या खायेंगे? उसने किसी विपत्तिमें पड़कर ही ऐसा काम कर लिया है।' पर व्यापारी महोदय जहाँ इतने परदुःखकातर और दयाशील थे, वहीं बड़े व्यापारकुशल भी थे। उन्हें उक्त

रोकड़ियेकी दीन दशा पर दया आयी, साथ ही उसे रोकड़के काम पर रखना उचित भी नहीं समझा—इसलिये कि कहीं फिर ऐसा न कर ले। उन्होंने दो-एक दिन बाद रोकड़ियेको बुलाकर उससे पूछा—'तुम्हारा कितना वेतन है, भैया?' 'सौ रुपये।' उसने कहा। 'सौ रुपयेसे कैसे काम चलता होगा?' व्यापारी महोदयने कहा। 'तकलीफ ही रहती है, बाबूजी!' रोकड़ियेने रोते हुएकी तरह कहा। व्यापारी महोदय बोले—'अच्छा! देखो, रोकड़के काममें तो वेतन बढ़ाया नहीं जा सका। तुम अमुक दूसरे कामको सँभालो। आजसे तुम्हारा वेतन डेढ़ सौ रुपये कर दिया गया।' व्यापारी होदयने शेयरोंके बाबत उससे एक शब्द भी नहीं कहा। इस ारताको देखकर सब लोग दंग रह गये।



गोदुग्ध अमृत है

मैं एक एलोपैथिक चिकित्सक हूँ। मेरे पास एक महिला, जो सरकारी कर्मचारिणी हैं, इलाजके लिये आयीं। इन्हें सभी अच्छे डाक्टरोंने एक्सरेद्वारा तथा स्वयं मैंने भी तपेदिककी बीमारी बतायी, जिसमें दोनों फेफड़ोंमें व्रण हो गये थे। कई एक अस्पतालों-ने तो उन्हें आखिरी स्टेज होनेके कारण भरती भी नहीं किया और घर जाकर मरनेकी अनुमति दी।

वे निराश होकर मेरे पास आयीं और बोलीं—'मेरा शरीर सैकड़ों इनजेक्शनोंसे जर्जर हो गया है और खर्च तथा गरीबीके कारण मेरी नाकमें लौंग भी नहीं रह गयी है।' मेरा हृदय भी उनकी दुर्दशा देखकर द्रवित हो गया। मैंने भगवत्स्मरण किया और प्रार्थना की—'भगवन्! इनका कष्ट अवश्य दूर हो।' उनकी प्रेरणासे मैंने उन्हें गायका दूध, जितना पी सकें, पीनेको कहा तथा दो दवाइयाँ खानेको बतायीं। उन्होंने एक गाय खरीदकर उसकी सेवा करना शुरू किया तथा एक सेर दूध प्रातः, एक सेर संध्याको पीने लगीं। १५ दिनोंके भीतर उनका स्वास्थ्य काफी सुधर गया तथा बुखार-खांसी सब गायब हो गये। दो मासमें वे बिल्कुल स्वस्थ हो गयीं और अबतक सरकारी काम कर रही हैं। बीमारीसे पहले उनके

तीन पुत्रियाँ थी। उसके बाद उनके एक पुत्ररत्न हुआ जो पूर्ण स्वस्थ है।

यह है गोमाताकी कृपा तथा उनके दूधका महत्त्व।

मैंने जिन-जिन भीषण रोगोंके रोगियोंको गोदुग्ध दिया, वे सब स्वस्थ हो गये, खास तौरपर क्षयरोगमें।

समस्त वैद्यसमुदाय तथा ऐसे रोगियोंसे प्रार्थना है कि वे इसक[illegible] [illegible]नुभव करें और लाभ उठायें।

—डा० श्याममोहन कपू[illegible]



दरिद्रता और मनुष्यता

मानवके लिये दरिद्रता एक अभिशाप है। एक उच्चकुलोत्पन्न नुष्य भी इस पिशाचिनीके हथकंडेमें पड़ किंकर्तव्यविमूढ़ और थभ्रष्ट हो जाता है एवं कुलको बट्टा लगानेवाले, अशोभनीय मर्म कर बैठता है। यह सब विधिकी विडम्बना है। ऐसी ही एक टना गत दीपावलीसे पहली दीपावलीके ठीक चार दिन पहले र्थात् ता० २९। १०। ५६ को हमारे यहाँ घटी। शामके साढ़े ात बजे होंगे। दीपावलीकी सज-धजके लिये सफाई की जा रही ी, सामान सब इधर-उधर बिखरा पड़ा था। सब अपने-अपने ाममें लगे हुए थे। मैं भी बाबुलनाथके दर्शन करके पेढ़ीपर आया ी था कि अचानक एक अजीब दृश्य मेरी आँखोंके सामने आया। खता क्या हूँ कि हमारा पटेल रघुवीर एक अज्ञात नौजवानसे ीढ़ियोंके पास छीना-झपटी कर रहा है। पटेल कह रहा था कि रे देखते तू यहाँसे दरी चुराकर नहीं ले जा सकता। हम सबका यान तुरंत ही उधर गया। वह मनुष्य इकहरे बदनका श्यामवर्ण, वच्छ एवं नवीन वस्त्र धारण किये, पैरमें नयी चप्पल पहने, ालोंमें कंघा किये, विषपूर्ण कनक-घटके समान वाणीमें अमृतका मठास भरे हुये था। आधुनिक हिन्दीमें बोल रहा था।

इतनेमें ही बड़ी बहादुरीसे उसे हमारा पटेल पेढ़ीके अंदर ले ाया और चारों ओरसे उसपर थप्पड़ और मुक्कोंकी बौछारें होने गीं। कारण स्पष्ट था कि वह रँगे हाथों पकड़ा गया था। उसने

एक बड़ी खासा लंबी-चौड़ी दरी, जिसकी कीमत आजके दिन क
से-कम ४०), ५०) रुपये तो होगी ही, चुरायी थी।

'दूसरे मालेके सेठने दी है'—कहकर उसने झूठी दलील पेश
की। किन्तु यह सफेद झूठ कैसे चल सकती थी। जो भी आया
सबने अपनी सामर्थ्यभर उसे धिक्कारें दीं और कुछने गालियाँ बक
कर अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझी। चित्त लेटकर मार खाते हुए
ही करबद्ध उसने सभीसे विनती करके अपनी दयनीय दशाको
चित्रित करनेका मिथ्या प्रयास किया।

वह कहता ही गया—'मुझे मारो, खूब मारो; मैंने यह जघन्य
निन्दनीय कुकर्म किया है—चोरी की है। मुझे पता है कि मैंने बुरा
काम किया है, दूसरेकी वस्तु चुरानेकी अनधिकार चेष्टा की है,
किन्तु यह सब इस पापी पेटके लिये। मेरे बच्चे, स्त्री—सब भूखे
पड़े बिलख रहे हैं। अन्य कोई उपाय न देखकर मुझे इस दुष्कर्मकी
ओर झुकना पड़ा। मैं भी एक उच्च मुल्तानी घरानेमें उत्पन्न हुआ
पढ़ा-लिखा व्यक्ति हूँ, एक अच्छे फर्ममें काम कर रहा था। पर
दुर्भाग्यवश मैं वहाँसे हटा दिया गया। अब बेकार इधर-उधर काम
की खोजमें फिरता रहा हूँ। निराश होकर पेटकी नित्य-प्रतिकी
ज्वालाकी पूर्तिके लिये आज यह काम किया है।'

किसीने आवाज दी—'पुलिसमें दे दो!' 'मैं बहुत लाचार हूँ,
मुझे पुलिसमें मत दो; मेरे निर्दोष बच्चोंकी ओर देखो; उनपर
दया करो……मैं आपके पैरों पड़ता हूँ, ईश्वरकी शपथ, मुझे
पुलिसमें मत दो।' मैं उसके करुण-क्रन्दनको सुनकर अवाक् स्तब्ध
खड़ा रह गया। क्रोध दयामें बदल गया। मैंने पेढ़ीवालोंसे कहा—
'अच्छा हो, आप सेठजीको इस घटनासे अवगत करा दें और उनके

आज्ञानुसार कार्य करें।' सेठजीको फोनपर सभी घटित बातें बतलायी गयीं। क्षमाशील, कृपालु हमारे सेठजीने घटित बातोंपर पर्दा डालते हुए तुरंत उत्तर दिया—'जाने दो; उससे कहो कि आगे ऐसा कुकर्म न करे, मजदूरी करके पेट पाले······।'

उस भूखे नादानने ईश्वरकी शपथके साथ इसे स्वीकार किया। पर मैं आज भी सोचता हूँ कि क्या उसने पेटकी ज्वालाकी विभीषिकाके रहते अपने वचनोंका ध्यान रक्खा होगा? क्या सेठजीका क्षमा-दान अपराधीके प्रति सही दण्ड या आदर्श बदला नहीं था? कौन ऐसा समझदार व्यक्ति होगा, जो उनकी मानवताकी सराहना किये बिना रह जाय।

—बाबूलाल बसावेका, 'साहित्यरत्न'



कलेजेके अक्षर

गणेशचतुर्थीका दिन था। सबेरे लगभग आठ बजे थे। हाथ-मुँह धोकर सब चाय-पानीकी तैयारीमें लगे थे कि बाहरसे आवाज आयी। भाई साहबने जाकर दरवाजा खोला, देखते हैं दो बैलोंकी रास हाथमें लिये एक चिथड़ेहाल ग्रामीण बाहर खड़ा है।

'कैसे हो, भैया ?' दरवाजा खोलनेवाले भाई साहबसे बूढ़े ग्रामीणने पूछा। 'सब ठीक है।' संक्षेपमें ही भाई साहबने उत्तर दे दिया।

ब्याज-बट्टेका धंधा करनेवाले हमारे पिताजीके जीवनकालमें ऐसे कितने ही ग्रामीण हमारे यहाँ आया करते। इस बूढ़ेका आना भी कोई नयी बात नहीं थी, परंतु बैलोंकी जोड़ीको साथ देखकर कुछ नयी-सी बात लगी।

बैलोंको बाहर बाँधकर धीरे-धीरे बूढ़ा भीतर आया और देहलीके पास बैठकर बोला—'भैया ! बड़े बाबू मरते समय हमारे विषयमें कुछ कह गये थे क्या ?'

पिताजीकी मृत्यु अचानक हृदयकी गति रुक जानेसे हुई थी; इस छोटी-सी बातकी तो चर्चा ही क्या, बड़ी-बड़ी महत्त्वकी बातें बिना बताये रह गयी थीं। अतएव भाई साहबने कहा—'बड़े बाबू-ने तो तुम्हारे बाबत कुछ नहीं कहा।'

'उनके बहीखातोंमें कोई लिखावट है ?' फिर बूढ़ेने पूछा।

भाई साहबने तुरंत पिताजीके सब बहीखातोंको देख डाला,

कहीं बूढ़के नामका कोई लेन-देन लिखा नहीं मिला। अतः उन्होंने कहा—'इनमें तो कहीं कोई लिखावट नहीं है।'

बूढ़ा जरा स्वस्थ होकर धीरेसे बोला—'भले भैया! बड़े बाबू खातेमें लिखना भूल गये। पर मैंने अपने कलेजेपर लिख रक्खा है। ये कलेजेके अक्षर कैसे मिट सकते हैं? तुम तो भैया! तब शहरमें पढ़ते थे, तुमको क्या पता। पर नहीं, परियार साल इसी गणेश चौथके दिन माँका कारज करनेके लिये मैं बड़े बाबूसे पाँच सौ रुपये ले गया था और इस साल गणेशचौथके दिन ब्याजसमेत कुल पाँच सौ और पचास रुपये लौटानेका मैंने वादा किया था। बड़े बाबू तो भगवान्के घर पहुँच गये, पर मेरा वादा थोड़े ही भगवान्के घर पहुँच गया। मुँहके बैन क्या कभी पलट सकते हैं?'

'न दस्तावेज, न लिखा-पढ़ी और न बहीखातोंमें कहीं उल्लेख। ानूनके अनुसार कोई भी प्रमाण नहीं, इतनेपर भी यह ग्रामीण ढ़ा केवल मुँहकी बातपर पाँच सौ ही नहीं, ब्याजके पचास रुपये ोड़कर पाँस सौ पचास दे रहा है और वह भी जिनसे लिये थे, उन बाबूको नहीं, उनके उत्तराधिकारीको। जिला अदालत, हाई-ोर्ट, सुप्रीमकोर्ट और कायदे-कानूनके इस जमानेमें यह घटना कतनी आश्चर्यजनक है?'

'खूनी निर्दोष ठहरे और निर्दोष फाँसी चढ़े। लाखोंकी लूट ोप हो जाय और पावरोटी चुरानेवाला जेल जाय। कागजका कड़ा जो कहे, वह हो। मनुष्य तो मानो मनुष्य ही नहीं रहा।

आंखों देखी बात झूठी साबित हो और कभी कल्पनामें भी न आने वाली बात सच्ची सिद्ध हो। कानूनकी दुनिया ही निराली है। झूठ, प्रपञ्च, अनीति और अनाचारका आश्रय लेकर कानूनके पंजेसे छिटक जानेवाला चालाक और प्रवीण माना जाय। जो वकील अधिक मात्रामें झूठ बोल-बुला सके, वह होशियार बतलाया जाय। सत्य तो मानो धरतीके उस पार ही जा छिपा! चार आने पैसोंके कानूनके अनुसार सही सिक्के बने—बस, मनुष्यका इतना भी मूल्य नहीं। यह है आजकी दुनिया और बस, यही है सुधार!' भाई बका मन विचार-सागरमें डूब गया।

'भैया! इन बैलोंको कहां बांधूं?'—बैलोंकी रास खींचते हुए बूढ़ेने पूछा।

विचार-सागरमें डूबे भाई साहब कुछ कहें—इसके पहले ही बूढ़ेने फिर कहा—'यह मेरा मतवाली चाल चलनेवाला—अभी पिछले साल ही एक सिंधीसे सौ-सौ रुपयेके तीन ढेर लगाकर इसे लिया था और इस ललमुंहेको बीस मन बिनोले और दस मन गेहूं देकर धन्ना सेठसे लिया था।' यों कहते-कहते बूढ़ेका गला भर आया, आंखें छलछला उठीं। मानो पैर टूट गये हों, वह वहीं ढुलक पड़ा। मालिकको संकटमें समझकर बैल उसे चाटने लगे। बूढ़ा भी धीरे-धीरे बैलोंको थपकाने लगा। तुरंत ही सारी हिम्मत बटोरकर बूढ़ा खड़ा हो गया और चौखटके पास पड़ी हुई अपनी लाठी हाथमें लेकर भाई साहबसे 'जै रामजीकी' करके चलते-चलते कहता गया—

'भैया ! घबराना मत, बड़े बाबू नहीं हैं, पर उनका यह पुराना चाकर अभी जी रहा है। बड़े बाबूने मेरे बहुत ढांकन ढके थे। उनका गुण कैसे भूला जा सकता है ? इन बैलोंकी कीमत साढ़े पाँच सौसे कम नहीं है। तो भी अगर पाँच सौ पचाससे कम रुपये उठें तो मुझे सँदेसा भिजवा देना, मैं अपने हल और खेत बेच-कर भी पूरा कर्जा भर दूंगा।'

इतना कहकर बूढ़ेने अपने सगे पूत-सरीखे बैलोंकी ओर एक नजर डाली और चल दिया। उसके डग-डगपर हृदयकी वेदना बोल रही थी !

—श्रीजयन्ती साह



रूसी महिलाकी सज्जनता

मेरे एक मित्रके कपड़ेकी दूकान है, यह प्रसंग उन्हींसे सुना हुआ है। इसे उन्हींके शब्दोंमें लिख रहा हूँ—

हमारी दूकानसे एक रूसी महिलाने बहुत-सा कपड़ा खरीदा। उन्हें अपने पतिके लिये एक स्वेटर की भी आवश्यकता थी। उन्हें वैसा स्वेटर बाजारमें नहीं मिला था। उन्होंने हमसे अनुरोध किया कि 'आर्डर देकर एक स्वेटर मँगवा दें।' मैंने पंद्रह दिनों बाद स्वेटर ले जानेको कहा।

ठीक पंद्रहवें दिन रूसी महिला आयीं। उन्हें देखकर मेरे होश उड़ गये; क्योंकि मैं उस बातको बिल्कुल भूल ही गया था। मैंने विनयपूर्वक सच्ची बात समझाकर कह दी। उन्होंने कुछ नाराज होते हुए कहा—'क्या तुम इण्डियन मैन! हमको दो-चार जगहसे ऐसा ही अनुभव मिला है।' मुझे दुःख और क्षोभ दोनों हुए। मैंने अब निश्चय ही मँगवा देनेको कहा और फिर पंद्रह दिन बाद आनेका अनुरोध किया। इन पंद्रह दिनोंमें मैंने कम्पनीके साथ पत्र-व्यवहार किया। कम्पनीको स्वेटरके सम्बन्धमें कुछ पूछना शेष रह गया था, अतः ठीक पंद्रहवें दिन स्वेटर नहीं आ सका!

पंद्रहवें दिन महिला फिर आयीं। मैंने अपनी परिस्थिति उनको समझा दी, उन्होंने मान लिया।

दो-तीन दिन बाद वे फिर मेरी दूकानपर आकर कहने लगीं—'मैं रूस जा रही हूँ। मेरे पति की अकस्मात् मृत्यु हो गयी। मुझे

यहाँ कोई खास काम नहीं था, केवल स्वेटरके लिये ही आपसे मिलने आयी हूँ। क्या स्वेटर आ गया ?'

मैंने उनके पतिकी मृत्युके लिये दुःख प्रकट करते हुए कहा—'स्वेटर अभी नहीं आ सका है !'

उन्होंने कहा—'आपने आर्डर तो दे ही दिया, पैसे ले लीजिये।' मैंने इनकार करते हुए कहा-- 'आर्डर कैन्सिल हो सकेगा। वे मेरी बात पर सहमत नहीं हो सकीं। बीस रुपये मेरी टेबलपर फेंककर वे सज्जन महिला तेजीके साथ सीढ़ियोंसे उतर गयीं; मैं उनकी सज्जनताको आँख फाड़े देखता ही रह गया।

—श्री ल० दे० राठौर



हकको छाछ

जेठका महीना है। भीषण गरमी पड़ रही है। जहाँ दुधा गायें भी सूख गयी हों, वहाँ दूध तो क्या, छाछका मिलना भ कठिन है। इसी समय हमारे गाँवमें एक गृहस्थने छाछका सदाव खोला। छाछ गाँवका जीवन है। अतः इस छाछ-सत्रकी बड़ी प्रशस हुई। सब ओर आशीर्वाद मिलने लगे।

हमारे पड़ोसमें एक कोलीका घर है। उस घरकी बहिन ए दूसरे पड़ोसीके यहाँसे छाछ लाती और बदलेमें पड़ोसीके पानी भ देती, अनाज पीस देती अथवा गोबर थाप देती।

एक दिन मैंने उससे कहा—'बहिन ! तुम सदावर्तकी छा क्यों नहीं लाती ? वह तो बहुत गाढ़ी और अच्छी होती है। ह भी लाया करते हैं, फिर तुम्हें क्या आपत्ति है ?'

'भाई ! बड़ी भारी आपत्ति है। वह धर्मादा है। उसक पावभर पानी भी हकका नहीं है। मेहनत किये बिना खायें तो प्र राजी न हों। थोड़ा-बहुत काम करनेपर पतली छाछ भी मि जाय तो अच्छा है। वह पेटमें पचेगी और लाभ करेगी।'

उस बहिनकी बात सुनकर मैं दंग रह गया। इस बहिनक अज्ञान कैसे कहें। बहुत लोग कोली स्त्रियोंको मूर्ख—अबोध मान हैं; परंतु उनका सिद्धान्त कितना ऊँचा है—यह जाननेका किसीव अवकाश नहीं है।

मेरा अहं टूट गया और बिना परिश्रमके ग्रहण करना पा है—इस सूत्रको जीवनमें उतारनेवाली बहिनने मुझको सचोट बो प्रदान किया, प्रेरणा दी।

—इच्छाशंकर पंड



हर्षका सागर उमड़ पड़ा

कुछ वर्ष पहलेकी बात है—गंगातटपर बसे हुए एक बहुत बड़े नगरमें नवयुवक मित्र गंगास्नान करने जा रहे थे। रास्तेमें उन्हें कीचड़में कोई चमकती हुई चीज दिखलायी दी। उन्होंने कौतूहल-वश कीचड़से उस चीजको निकालकर देखा तो वह बहुत बहुमूल्य हीरेका हार था—कम-से-कम एक लाख रुपये मूल्यका। वे दोनों स्वयं पहले धनी घरानेके थे, उन्हें हीरों की पहचान थी। उनमेंसे एक मित्र बहुत अधिक अर्थसंकटमें था। उसने कहा—'भाई! मालूम होता है भगवान्‌ने मेरी पुकार सुन ली। इसीसे तो यह बहुमूल्य हार मिला है। आज ही इसे ले जाकर तुड़वा लेंगे और हीरे बंबई ले जाकर बेच देंगे। हमलोगोंका बहुत बड़ा संकट टल जायगा।' दूसरा मित्र भी अर्थसंकटमें था, पर वह बोला, 'भैया! पराये धनपर मन चलानेसे कभी संकट दूर नहीं होगा। जरा सोचो तो, कोई बहिन गंगास्नानको जाती हुई इसे गिरा गयी होगी, वह घर जाकर हार सँभालेगी और नहीं मिलेगा तो उसके चित्तको कितना भारी दुःख होगा। फिर, पराया धन कभी लाभदायक भी नहीं होता तथा वह टिकता भी नहीं। अतएव भैया! मैं तो घर जाते ही कपड़े पहनकर किसी समाचार-पत्रके दफ्तरमें जाऊँगा और उसमें यह सूचना छपवाऊँगा कि 'हमें एक हार मिला है; जिनका हो, वे प्रमाणित करके ले जायँ। या इसे मारवाड़ी असोसियेशनमें जमा करा दूँगा, वे लोग पता लगाकर जिनका होगा, उन्हें दे देंगे।'

पहले मित्रकी बात तो कुछ जँची; पर उसके मनमें लोभ था अं
वह समझ रहा था—सहज ही जब संकट टलनेका साधन मिल ग
है, तब इसे क्यों छोड़ा जाय ! अतएव कई तरहके युक्तिपूर्ण त
उपस्थित करके उसने मित्रको समझानेकी चेष्टा की; पर वह न
माना और आखिर यही निश्चित हुआ कि चलकर अखबार
सूचना छपवायी जाय।

वे गंगास्नानका विचार छोड़कर घरकी ओर मुड़ गये। थो
ही दूर गये थे कि देखते हैं एक अधेड़ उम्रका पुरुष तीन-च
आदमियोंको साथ लिये कीचड़में किसी चीजको खोज रहा
बड़ा परेशान है। उसकी आँखोंमें आँसू बह रहे हैं, चेहरे पर गह
उदासी छायी है। दोनों मित्रोंने उसको देखा और सोचा कि 'शा
वह हार ही खोजा जा रहा होगा।' उनमेंसे एकने आगे बढ़
पूछा—'बाबू ! आप क्या खोज रहे हैं, क्या आपकी कोई चीज
गयी है? आप इतने उदास क्यों हैं? उसने यह बात सुनकर
पीट लिया और कहा—'भाई ! क्या बताऊँ, मैं बेमौत मारा गय
गजब हो गया। हार न मिला तो मुँह नहीं दिखाऊँगा—आत्महत
कर लूँगा; पर क्या होगा—आत्महत्यासे? मेरा कलंक थोड़े
उतरेगा। हाय !' इतना कहकर वह पुनः खोजमें लग गया। इ
पर इन मित्रोंने फिर पूछा, तब उसने कहा— भाई ! बतानेसे क्
होगा; हम लोग भी पहले पैसेवाले थे। आज बहुत गरीब हालत
हैं। मेरी एक लड़की अमुक करोड़पतिके यहाँ अमुक स्थानमें ब्या
है। हम धनी थे, तब तो परस्पर बड़ा प्रेम था। पर अब तो ह
उनके प्रेमके नहीं, घृणाके पात्र हैं। यही नहीं, उनकी दृष्टिमें चो
हैं। धनियोंकी दृष्टिमें गरीब चोर ही होता है। देखिये, मेरी लड़क

गहना हमारे यहाँ पड़ा था, उसे उन्होंने मुझपर अविश्वास करके —यह समझकर कि कहीं यह गहना बेचकर खा न जाय, चालाकीसे गवा लिया । मुझे कोई दुःख नहीं था । उनकी चीज उनके पास हे । मैं तो बड़ी जोखिमसे बचा । वे मेरी लड़कीको भी मेरे यहाँ जनमें अविश्वास मानकर, अपनी तौहीन समझकर आनाकानी करने लगे । मुझ मुफलिसके घर करोड़पतिकी बहू भला कैसे आ सकती है । लड़कीकी माँका बुरा हाल था । मैंने बड़ी आर्जू-मिन्नत की तो उन्होंने मेरी लड़कीको पाँच-सात दिनोंके लिये भेजा । पक्का इकरार करा लिया कि सात दिनके बाद उसे वापस भेज देना पड़ेगा । यहाँतक कि रेलके टिकट भी रिजर्व करा लिये गये ।

'लड़कीको आये पाँच दिन हुए हैं, आज बहुत तड़के ही वह अपनी माँके साथ गंगास्नान को आयी थी। रास्तेमें कहीं उसके गलेका हीरेका नेकलेश (हार) गिर गया । मैं तबसे खोज रहा हूँ, पर मिल नहीं रहा है। हार न मिला तो वे यही समझेंगे कि लड़कीको फुसलाकर मुफलिस माता-पिताने हार हड़प लिया है । पता नहीं वे मेरी भोली लड़की को क्या-क्या कहेंगे, कैसी-कैसी गालियाँ देंगे । मुझे तो चोर-डाकू समझेंगे ही । अच्छा होता, लड़की घर आती ही नहीं । हाय ! अब मैं क्या करूँ ?'

उसकी दीन दशा देखकर दोनों मित्रोंको बड़ी दया आयी । न्होंने सोचा—हो-न-हो, हार इन्हींका है । उन्होंने कहा—बाबू ! प घबराइये नहीं । भगवान् किसी ईमानदार तथा सच्चे पुरुषपर ंक क्यों लगने देंगे ? एक हार हमें रास्तेमें मिला है । अभी वड़में सना है । आप घर चलिये—वहाँ आपकी लड़की हार कर पहचान लेगी तो आप और हम उसे लेकर उसके ससुराल

चलेंगे और सारी बातें इनको समझा देंगे। यों कहकर उन्होंने हा
दिखलाया। हार देखते ही वह नाच उठा, अब उसकी आंखो
आनन्दके आँसुओंकी धारा बह चली। वह गद्गद होकर उन दो
मित्रोंके चरणोंमें लिपट गया। आम रास्ता था, लोग इकट्ठे हो
लगे। तब उन मित्रोंने हो-हल्लेसे बचनेकी नीयतसे हार जेब
डाला और उस सज्जनको साथ लेकर वे उसके घर पहुँचे। घर
कुहराम मचा था। लड़कीकी माँ बुरी तरह रो रही थी और बेट
पास बैठी उसे समझा रही थी।

इतनेमें ही लड़कीके पिताने आकर रोते हुए कहा—'बेटी!
रो मत। दो देवता आये हैं—तेरा हार लेकर। देख, हार पहचा
और इनके चरणोंमें नमस्कार कर।' हार पहचान लिया गया।
उन गृहस्थ-दम्पतिके सुखका क्या ठिकाना। उनका रोम-रोम उ
दोनों मित्रोंको आनन्दाश्रुओंके साथ कृतज्ञतापूर्ण आशीर्वाद दे रह
था। वे दोनों भी बड़े ही प्रसन्न थे। उन्हें अर्थसंकटसे मुक्त होनेप
कैसा क्या सुख मिलता, सो तो अलग बात है, पर इस दृश्यक
देखकर तो उनके हृदयमें हर्षका सागर ही उमड़ रहा था।

—विद्यान



माँगने आये कि देने ?

कुछ वर्षों पहलेकी घटना है। एक बड़े व्यापारी सज्जन, जिनके बड़ा कारोबार था, जो प्रसिद्ध उदार तथा दानी कहलाते थे, अपने घरके बाहरके हिस्सेकी आफिसमें बैठे फाइलोंको देख रहे थे। इतने-में बाहरसे दरबानने आकर कहा—'बाबूजी ! बाहर एक सज्जन खड़े हैं, मिलना चाहते हैं।' बाबूजी मनमें बहुत कुढ़े, बोले—'ये माँगनेवाले जरा भी दम नहीं लेने देते, सुबहसे ही आने लगते हैं !' पर अपनी सभ्यताकी रक्षा करनेके लिये बोले—'अच्छा भेज दो।' दरबान लौट गया और एक सादी पोशाकका सुन्दर नवयुवक अंदर आ गया। बाबूके संकेतसे वह एक कुर्सीपर बैठ गया। बाबूने फाइलों-से जरा दृष्टि हटाकर रूखे स्वरमें पूछा—'क्यों कैसे आये ? क्या काम है ? आजकल तो मैं तंग आ गया हूँ। ये माँगनेवाले कभी भी आरामसे काम नहीं करने देते ? आप किस कामसे आये हैं, बताइये।' आगन्तुक तरुणने मुसकराते हुए कहा—'बाबू ! मैं तो माँगने नहीं आया हूँ, मैं तो एक विशेष कामसे आपके पास आया हूँ। आपसे कुछ जरूरी बात कहनी है।' फिर दोनोंमें निम्नलिखित बातें हुई—

बाबू—बोलिये तो, क्या बात कहनी है ?

आगन्तुक तरुण—दो साल पहले आपके···कारखानेका राजेन्द्र

नामक एक आदमी चोरीके अपराधमें पकड़ा गया था। उसे साल भरकी जेल हो गयी थी, आपको याद है न ?

बाबू—(बिना रुख जोड़े) हाँ, याद है !

तरुण—क्या यह भी याद है कि आपने उसको निर्दोष जानते हुए भी स्वार्थवश रिश्वत देकर वकीलोंपर पैसा खर्चकर तथा अन्यान्य प्रकारसे प्रयत्न करके जेल भिजवाया था और फिर वह अपीलमें छूट गया था।

बाबू—(जरा कड़े स्वरमें) हाँ, किया होगा।

तरुण—तो बाबू, वह राजेन्द्र मैं ही हूँ।

बाबू—(कुछ डरे हुए, कुछ तमतमाते हुए) तो क्या बदला लेने आये हो ?

तरुण—हाँ; आया तो हूँ बदला लेने ही।

बाबू—तो क्या करोगे ?

तरुण—आप खातिर रखिये, मैं आपको मारूँगा नहीं, केवल आपसे दो बातें कहकर चला जाऊँगा।

बाबू—(नरम होकर) अच्छा, तो कहो।

तरुण—जिन लोगोंके कहनेसे आपने स्वार्थवश उस समय मुझको जेल भिजवाया था तथा जिनके साथ मिलकर आपने पीछे बहुत बड़ा अवैध कारोबार किया था, उनसे साझेदारीको लेकर आपसे झगड़ा हो गया था—यह तो आप जानते ही हैं। अब मुझे उनके एक भयानक षड्यन्त्रका पता लगा है और मैंने अच्छी तरहसे

...ा गया था। ...ारी जाँच-पड़ताल कर ली है, तब आपको सावधान करने आया ...। बात यह है कि उन लोगोंने उस कामपर तथा उसमें लगी ...ारी पूंजीपर अपना पूरा अधिकार कर लेनेकी इच्छासे आपको ...को निर्दोष ...संसारसे उठा देनेकी पूरी व्यवस्था कर ली है। इसके प्रमाणमें ... अमुकके हाथका अमुकके नाम लिखा हुआ यह पत्र है। आप हस्ता-...और ...र पहचानते ही हैं। (इतना कहकर उसने पत्र पढ़वाया और ...फिर कहा—) कल रातको आपको जो दावत देनेकी व्यवस्था की ...यी है; वह उन्होंने ही उस अमुक व्यक्तिको लालच देकर करवायी ...है, जिसको आप अपना मित्र माने हुए हैं। दावतके बाद ही आपको ...समाप्त कर देनेकी योजना है। आपने मेरे साथ बुरा व्यवहार किया ...था, परंतु मेरा यह सिद्धान्त है—मुझे गुरुजीने यह कहा था कि ...तुम्हारा बुरा तुम्हारे प्रारब्धके बिना कोई कर नहीं सकता। करना ...चाहता है तो वह अपना ही बुरा करता है—इसलिये वह दयाका ...पात्र है, क्रोधका नहीं।' अतएव मुझे जब पता लगा और पक्का ...प्रमाण मिल गया तब मैं आपको सूचना देने आ गया। आप बचने-...की व्यवस्था कर लें। अच्छा! अब मैं जाता हूँ। आपके शत्रुओं-...को कहीं यह पता लग गया कि मैंने आपको इसकी सूचना दी है, ...तो वे मुझे मारे बिना नहीं छोड़ेंगे। मैं अपनी जानपर खेलकर ...इसीलिये आपके पास आया हूँ कि यही मेरा पुनीत कर्तव्य है। (यों कहकर वह चल दिया।)

बाबूजी आँख फाड़े देखते रह गये। सोचने लगे, 'कहाँ मैं नीच

स्वार्थवश झूठे मुकदमेमें फँसाकर निर्दोष नवयुवकको जेल भिजवाने वाला और कहाँ यह महान् उच्च हृदयका नवयुवक; जो मुझ नीच नराधमको मृत्युसे बचानेकेलिये जानपर खेलकर मुझे सावधान करने आया है ? मैंने इसको माँगनेवाला समझकर इसका तिरस्कार किया था, पर यह तो मुझे प्राण-दान करने आया है।'

बाबूके हृदयमें पश्चात्ताप, दैन्य, कृतज्ञता, सत्पुरुषमहिमा और ईश्वर-कृपा आदि अनेकों भावोंकी विविध तरंगें उठने लगीं षड्यन्त्रकी बात सच्ची थी ही। सारी व्यवस्था हो गयी, षड्यन्त्रकारी पकड़े गये और उन्हें यथायोग्य दण्ड भोगना पड़ा।

—सोहनलाल गु०



'राखे राम तो मारे कौन ?'

"यह घटना अनुमानतः पंद्रह-सोलह वर्ष पूर्वकी है। जिस स्थानकी यह घटना है, भारतवर्षका वह हिस्सा अब पूर्वी पाकिस्तान-में है। बरीसाल जिलान्तर्गत 'भोला' नामक द्वीपमें हमलोग व्यापार-के निमित्त सपरिवार रहा करते थे।

"एक दिन रात्रिमें हमलोग अपनी दूकानमें बैठे हुए थे। रात्रिके नौ बजे होंगे, बरसातके दिन थे। जोरोंसे वर्षा हो रही थी, कुछ-कुछ तूफान भी आ रहा था। हमारे यहाँ सुपारीका व्यापार होता था। मजदूर लोग रातको ग्यारह-बारह बजेतक उस काममें लगे रहा करते थे।

"उस रात्रिकी घटनाके वर्णन करनेके पूर्व यह बतला देना अत्यन्त आवश्यक है कि मैंने अपने बाल-बच्चोंको कुछ दिन पूर्व ही कलकत्ते भेज दिया था। हमारी दूकानके पीछे ही गोदाम बने थे, वहींपर मजदूर काम किया करते थे। 'भोला' में सभी मकान टीनों-के ही बना करते थे—दीवार भी टीनोंकी एवं छप्पर भी टीनोंके ही।

"पानी तो अकसर बरसा ही करता है। इसमें कोई खास बात नहीं थी। थोड़ी ही देर बाद मजदूरोंका सरदार आया और कहने लगा कि गोदामोंमें नीचेकी ओरसे पानी आना शुरू हो गया है। इसपर हमलोग सोच ही रहे थे कि क्या करें। इसी बीचमें बड़े जोरोंकी साँय-साँयकी आवाज आने लगी। सरदारने कहा—

तूफान बड़े जोरोंसे आ रहा है, एवं साथ ही देखा गया तो जिस दूकानमें हमलोग बैठे थे, उसमें भी नीचेसे पानी आना प्रारम्भ हो गया। पानीका वेग क्रमशः बढ़ रहा था, कुछ भी उपाय समझमें नहीं आ रहा था। बुद्धि भी काम नहीं दे रही थी। जैसे-जैसे पानी बढ़ने लगा, अगल-बगलके सैकड़ों लोग भी हमारी दूकानमें आने लगे; क्योंकि उनसबके मकानोंसे हमारा मकान काफी मजबूत था। देखते-ही-देखते पानी घुटनोंतक आ गया।

"अब तो सब लोगोंने प्रायः प्राणोंकी आशा छोड़ दी और बचावका उपाय सोचने लगे। तूफान इतना भयंकर था कि आस-पासके मकानोंकी टीनें उड़-उड़कर गिरने लगीं, नारियल और सुपारीके बड़े-बड़े पेड़ भी टूट-टूटकर गिरने लगे। प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। उधर बाढ़का पानी कमरसे थोड़ा ही नीचे रह गया। यह सब इतनी शीघ्रतासे हुआ कि कठिनतासे बीस मिनट समय लगा होगा। किसी-किसीने दूकानपर बनी हुई लटानपर चढ़ जानेकी सलाह दी। लेकिन तूफान और बाढ़के जलका इतना वेग था कि किसी भी समय दूकान-गृह टूट सकता था।

"सब लोग सच्चे हृदयसे भगवान्‌को पुकारने लगे। अब जीवनका अन्तिम क्षण उपस्थित था। मेरे मनमें अब भी माया रह रही थी। मैंने सारे बहीखाते तिजोरीमें बन्द कर दिये और उपस्थित लोगोंसे कहा कि 'आप लोगोंमेंसे यदि कोई जीवित रहे तो हमारी खोजमें हमारे घरसे जो लोग आयें, उन्हें कह देना कि बहीखाते सब इस तिजोरीमें ही है।'

"इसके बाद फिर सब लोग भगवान्‌का नाम-कीर्तन करने लगे। इतनी देरमें जैसे मुझे कुछ संकेत मिला। थोड़ी ही दूरपर हमा

एक परिचित एवं मित्र उत्पल बाबू वकील रहा करते थे। उनका मकान ईंट-चूनेसे दुमंजिला बना था और काफी मजबूत था। हमने सोचा, उत्पल बाबूसे हमारा इतना मेल है, क्या इस संकटके समय वे हमको शरण नहीं देंगे ? कुछ संकोचके साथ ही हमने उनके दो-मंजिले मकानपर जानेकी ठान ली और उपस्थित सब लोगोंसे भी हमने चलनेके लिये कहा। हम सब लोग साथ-साथ चले।

"कमरतक पानीमें, नंगे पैर, जमीनपर लोहे-लक्कड़, टीनोंका ढेर पार करते हुए, सिरपर बारिस और तूफानका वेग सहते हुए करीब चार फर्लांगकी दूरीपर हमलोग उत्पल बाबूके मकानपर किस तरह सकुशल पहुँच गये, यह भगवान् ही जानें। उस बातका जब स्मरण होता है, तब अब भी बदनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

"उत्पल बाबूने हमलोगोंका स्वागत किया। हम तो संकोचके साथ ही उनसे प्रार्थना करनेवाले थे कि 'आप इस संकटमें हमको आश्रय दीजिये।' परन्तु इसका उन्होंने मौका ही नही दिया। हमारे पहुँचते ही उन्होंने एक नयी धोती और नयी बनियान लाकर मुझको दी और कहा—'आप कपड़े बदल डालिये।' मैंने उनसे बहुत ही विनय की कि 'आप इतना कष्ट न कीजिये, आपकी इतनी दया ही यथेष्ट है।' किंतु वे कब माननेवाले थे। आखिरकार कपड़े बदल मैं एक कुर्सीपर बैठ गया एवं इष्टदेवका स्मरण करने लगा। नाना प्रकारके विचार मेरे मानसपटपर सिनेमाके चित्रोंकी तरह आ-जा रहे थे। मैं सोच रहा था, 'कल मैं क्या था और आनेवाले सुबह मैं क्या हो जाऊँगा ? पानी उतर भी गया तो मैं बिना पैसे-कौड़ी कैसे कलकत्ते पहुँच पाऊँगा ? क्या जहाजवाले मुझे बिना टिकटके ले जायँगे, हालाँकि इस जहाज कम्पनीने आजतक मेरा माल ले जाकर

काफी रकम उपार्जित की है। कल मैं खाऊँगा भी क्या ? क्योंकि सभी चीजें पानीमें वह गयी गयी होंगी इत्यादि-इत्यादि' तरह-तरह विचारोंका द्वन्द्व चल रहा था।

"अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ भगवान्की महत्ताको क्या जाने ! जानता होता तो अपने लिये या अपने निर्वाहके लिये इतना चिन्तन न करता उन मंगलमय प्रभुका ही चिन्तन करता, जो सब कष्टोंको मिटाने लिये सदा कटिवद्ध रहते हैं।

"धीरे-धीरे पो फटने लगी। वर्षा भी रुक गयी, तूफान भ शान्त हो गया एवं प्रकाश भी होने लगा। छतपर जाकर देख तो वड़ा प्रलयकारी दृश्य देखा जा रहा था।

"वाढ़का पानी उतर चुका था। चारों ओर हृदयविदार दृश्य था। टूटे घर, दरवाजे, त्रिखरे टीनोंके छप्पर, धराशाय वृक्षोंके ढेर आदि चारों ओर नजर आ रहे थे। यह पहचानन कठिन था कि कौन-सा घर किसका है; क्योंकि छतोंपर छप्पर शाय ही किसी मकानपर वचा था।

"अव विचार हुआ कि किसी मनुष्यको भेजकर पता लगा कि हमारे घरका क्या हाल है। वहाँ एक गाय भी अपने बछड़े साथ वँधी थी और भी दो-तीन आदमी वहाँ रह गये थे। ए आदमीको भेजा गया। करीव दो घंटे वीत गये, वह वापस न लौटा। जव कि दूरीके हिसावसे पंद्रह मिनटमें ही उसे लौट आ चाहिये था। फिर दूसरा आदमी भेजा गया, वह भी नहीं लौटा कारण कुछ समझमें नहीं आ रहा था। निश्चय करनेके लिये हम लोग सव-के-सव दूकानकी ओर चले। जिस रास्तेको तय करने दस मिनटसे ज्यादा समय नहीं लगना चाहिये था, वह रास्ता है

घंटेमें तय कर पाये; क्योंकि रास्ता कहीं था ही नहीं। सब जगह घर-दरवाजोंके टूटे-फूटे हिस्से, पेड़, कूड़ा-करकट आदि पड़े थे। जमीन कहीं दिखायी ही नहीं दे रही थी।

"यही कारण था कि पहले जिन दो व्यक्तियोंको भेजा गया था, वे किसी तरह गन्तव्य स्थानतक पहुँच तो गये, परंतु वापस आना उनके वशकी बात नहीं थी।

"जाकर देखा तो हमारे घर-दरवाजे तो सही-सलामत थे, परंतु एक बछिया मर गयी थी और बाढ़के पानीसे सारा माल भीग गया था। सामान सब मौजूद था, किंतु सब भीगा हुआ।

"अब चिन्ता हुई कि पेटकी ज्वालाको कैसे शान्त किया जाय, क्योंकि पानीसे सब कुछ बह गया था। पीनेका शुद्ध जल भी मिलना कठिन था। तालाब सब बाढ़के पानीसे भर गये थे एवं वहाँ तालाबका पानी ही पीनेके काम आता था। परंतु भव-भयहारी परमात्माने सब व्यवस्था कर रक्खी थी। एक मिट्टीके मटकेमें करीब एक मन चावल था, जो पानीपर तैरता रह गया एवं कमरेके दरवाजे बन्द होनेके कारण बाहर बहकर नहीं निकल पाया। सब लोगोंने उसीमेंसे चावल बनाकर भोजन किया। एव शहरके सरकारी तालाबके किनारे काफी ऊँचे थे, इस कारण उसमें बाढ़का पानी नहीं जा सका था। अतः उसका पानी पीनेको मिल गया।

'धीरे-धीरे स्थिति सुधारने लगी। सरकारी सहायता भी पहुँचने लगी, अन्य संस्थाएँ भी आयीं। खबर पाकर कलकत्तेसे हमारे घरसे भी लोग आये। इतना बड़ा प्रलय हुआ; किंतु जैसे कोई आँच ही न आयी हो, ऐसा लग रहा था। इतनी बड़ी घटनाको देखते हुए हानि कुछ भी नहीं थी। एक बछियाकी दुःखद घटनाके

अतिरिक्त गृहहानि, मनुष्यहानि, अर्थहानि कुछ भी नहीं हुई। अर्थहानि इसलिये नहीं समझी गयी कि उक्त घटनाके कुछ दिनों बाद ही जो वस्तुएँ बाढ़के जलसे भीग गयी थीं, उनका मूल्य बढ़ता गया एवं सब माल ऊँचे दामोंमें बिक गया। यह सभी भगवान्‌का विधान था। सबसे बड़ी कृपा तो यही थी कि हमने बाल-बच्चोंको कुछ दिन पहले ही कलकत्ते भेज दिया था। वे होते तो सम्भवतः काफी कष्टका सामना करना पड़ जाता एवं सबके प्राणोंकी रक्षा होना भी सम्भव न होता।

"हमलोग इस भीषण रात्रिमें कैसे उत्पल बाबूके यहाँ पहुँच गये एवं कैसे वे चावल बाढ़से अछूते बच गये? कैसे सरकारी तालाबका पानी शुद्ध बचा रह गया? इन बातोंका अब भी जब स्मरण होता है तब विश्वके रक्षक, दीनदयालु परमात्माकी दयाका कोई पार नहीं मिलता।'

—रामजीवन चौधरी



प्रार्थनाका सुफल

लगभग साढ़े नौ वर्ष पहलेकी बात है। मेरे पतिकी मृत्युके बाद मैं सर्वथा अकिंचन हो गयी थी। उस समय मेरी उम्र ५१ वर्षकी थी और मैंने कभी अपनी जीविकाके लिये कुछ कमाया न था। मुझे बड़ा भय हो गया। मेरा हृदय भयसे भर गया। मुझे नींद हराम हो गयी। मैं रातों जाग-जागकर सोचा करती 'मुझे क्या करना चाहिये ?' अनिद्राके कारण मेरी स्थिति और भी बिगड़ने लगी।

"मैंने अनुभव किया कि सबसे पहले मुझे इस भयसे छुटकारा पाना चाहिये। मैं प्रतिदिन प्रातःकाल भगवान्से प्रार्थना करने लगी कि वे मेरे भयको मिटा दें। तीन सप्ताहके पश्चात् मेरे हृदय-में पूर्ण शान्ति और स्थिरता आ गयी। मेरा सारा भय जाता रहा।

अब मैंने ईश्वरसे यह प्रार्थना की कि वे मुझे काम पानेके लिये ठीक स्थानपर पहुँचा दें। एक दिन बड़ी वर्षा और आँधी आ रही थी, उस दिन मुझे किसीसे भी मिलने नहीं जाना चाहिये था। पर मेरे अंदर प्रेरणा हुई कि मैं आज ही जाकर अमुक सज्जन-से मिलूँ। मुझे पता ही न था कि कामके लिये कहीं कैसे दरख्वास्त देनी चाहिये और पहलेसे मिलनेका समय निश्चित करा लेना चाहिये। मैं जब उन सज्जनके कार्यालयमें पहुँची, तब उनके सेक्रेटरीने मुझे बताया कि वे बिना पहलेसे समय निश्चित किये कभी किसीसे नहीं मिलते। जो कुछ भी हो, मैंने सेक्रेटरी महोदय-के द्वारा अंदर कार्ड भिजवाया। मुझे तुरंत बुला लिया गया और

वे मेरे साथ अच्छी तरहसे मिले। पहली बात उन्होंने यह कही कि 'तुम्हारा बड़ा भाग्य है, जो तुमने इस पानी बरसते दिनको मिलनेके लिये चुना (यद्यपि मैंने नहीं चुना था, यह तो ईश्वरने ही चुना था); क्योंकि आज ही मैं बाहर जानेवाला था, पर बरसातके कारण रुक गया। उन्होंने फिर कहा कि 'तुम बहुत ठीक समयपर पहुँची; क्योंकि मैं अभी अपनी संस्थाके लिये कुछ नये लोगोंकी नियुक्ति करनेवाला था!' उन्होंने मुझे उसी समय काम दे दिया और तबसे मैं वहीं काम कर रही हूँ। मुझे आशा है कि मेरे इस लेखसे उन लोगोंको सहायता मिलेगी जो मेरी ही भाँति पचास वर्षके ऊपरके हैं और वैसे ही डरे हुए हैं।

—ई० एस० पी० (एक अमेरिकन महिला)



गरीबोंके सहायक

कुछ वर्षों पहले वढ़वाण शहर और उसके आस-पासके भागोंमें हामारी फैल गयी थी। बालक-वृद्ध, छोटे-बड़े, गरीब धनी—सभी ा रोगके शिकार हो गये थे। रोज दर्जनों आदमी ईश्वरके दरबार- पहुँचते थे। गरीबोंकी स्थिति तो अत्यन्त करुणाजनक थी। जहाँ ट भरनेका साधन न हो, बच्चे दूधके अभावसे तिलमिलाते हों, हाँ दवाकी तो बात ही कैसे सोची जाय ?

इसी समय उसी गाँवके एक दयालु पुरुषने गरीबोंके लिये अपने डार खोल दिये। वह अनाज, कपड़ा, दवा रोगियोंके घर-घर हुँचाने लगा। सूनी-अँधेरी रात हो, साँय-साँयकी आवाज करती डी हवा चलती हो, कड़कड़ाता जाड़ा हो, यह दयालु पुरुष रातों र-घर फिरता और यथासाध्य सबकी जरूरतें पूरी करता। रातको ाये लोगोंको किवाड़ खड़काकर जगाता। बाहरसे आवाज देता— ाई ! तुम्हें किसी चीज की जरूरत है क्या ? मैं तो तुम्हारे टुम्बका ही आदमी हूँ. मुझे दूसरा मत समझना। बताओ क्या रूँ ?" यों कहता हुआ उनको आवश्यक वस्तु देकर तुरन्त ही दूसरे घर की ओर जाता और ऐसे ही मीठे आत्मीयताभरे शब्दोंसे बातचीत करके आवश्यक वस्तुएँ देता। उसके मनमें उस समय गाँवभरको बचा लेनेकी ही एकमात्र कामना थी।

एक दिन एक बुढ़ियाका भरपूर जवान पुत्र महामारीका शिकार होकर चल बसा। वृद्धाका एकमात्र सहारा टूट गया। सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। बेचारी बुढ़ियाको आश्वासनके दो मीठे

वचन कौन सुनाता। कौन उसका सहारा बनता। इस द
सज्जनको पता लगते ही तुरन्त यह बुढ़ियाके पास पहुँचा और
आश्वासन देते हुए बोला—'तुम्हारा वह पुत्र चला गया तो
मैं तो अभी जीवित हूँ। आजसे तुम मुझीको अपना पुत्र मानन
यों कहकर यह दयालु सज्जन उस बुढ़ियाको आदरपूर्वक अपने
ले गया—एक पुत्र अपनी माताको जिस आदर और प्रेमसे ले ज
है, उसी आदर और प्रेमसे।

भगवान्‌की कृपासे महामारीका प्रकोप धीरे-धीरे कम होने
तथा अन्तमें शीघ्रही सर्वथा शान्त हो गया। आश्चर्यकी बात
यह थी कि उस समय वहाँ ऐसा एक भी घर नहीं बचा था,
किसी रोगीकी चारपाई न हो। परन्तु इस दयालु सज्जनके घ
कोई भी इस रोगका शिकार नहीं हुआ। वह सज्जन स्वयं रात-
रोगियोंकी जमातमें ही बैठा रहता—उनकी दवा-दारू करता,
जरूरी चीज देता, आश्वासन देता, इतनेपर भी रोगके अंशम
भी इसका स्पर्श नहीं किया, मानो रोगियों की सेवा करनेके
ही ईश्वरने इसको रोगसे सर्वथा मुक्त रक्खा था।

—रमणीक गोसा



मानवता

(१)

जिसका व्यवहार सदा ही गंदा समझा जाता है, उस पुलिस-विभागमें जब कोई दयालु और सज्जन पुरुष दिखायी देते हैं, तब लोगोंको आश्चर्य होता है। एक ऐसा ही प्रसङ्ग सौराष्ट्रके केशोद ग्राममें देखा गया।

केशोदमें एक भाई तमंचा साफ करके उसे भर रहे थे। भरनेके बाद वे उचित स्थानपर उसे रख रहे थे कि तमंचा अचानक छूट गया और उससे उनकी छातीकी दाहिनी ओर गहरी चोट लगी। नवयुवक चेतनहीन होकर जमीनपर गिर पड़े।

इस दुर्घटनाका समाचार मिलते ही पुलिस-जमादार श्रीगेरैया तुरंत वहाँ पहुँचे। जाकर देखते ही उनको लगा कि यदि इस नवजवानको तुरंत ही जूनागढ़ अस्पतालमें ले जाकर इसका इलाज कराया जाय तो यह बच सकता है। परंतु उस गाँवमें उसका न तो कोई कुटुम्बी था न सगा-सम्बन्धी। जूनागढ़ ले जानेका सवारी-खर्च कौन दे, यह प्रश्न सामने आया। गाँवमें कोई भी इसके लिये तैयार नहीं हुआ। इस प्रकारके दृश्यको देखकर भी मानव-हृदय द्रवित नहीं हुए। समय बीत रहा था और नवयुवककी स्थिति बिगड़ती जा रही थी। इससे अन्तमें पुलिस-जमादार श्रीगेरैयाने जूनागढ़तकका मोटर-किराया ३०) रुपये अपने पाससे देकर उस नवजवानको तुरंत जूनागढ़ पहुँचाया और यों बुझते हुए एक जीवन-

दीपको इस दयालु पुलिसमैनने बचा लिया ।

केवल ८०) वेतन पानेके कारण आर्थिक स्थिति अच्छी होनेपर भी तथा बड़े कुटुम्बके निर्वाहका भार अपने ऊपर होते हुए भी, एक मानव-प्राणके सामने इस रकमको नगण्य समझ श्रीगेरैयाने अपनी हैसियतसे कहीं अधिक पैर बढ़ाया । धन्य !



मानवता

(२)

मेरे पड़ोसीका लड़का अचानक बीमार पड़ गया। आर्थिक ‍स्थिति अच्छी न होने के कारण इलाजकी व्यवस्था ठीक न हो सकी ‍ौर इससे उसकी बीमारी बढ़ती ही गयी। पता लगानेपर मैं एक ‍च्छे डाक्टरको लेकर उसके घर गया। डाक्टरने देख-भालकर एक ‍न्जेक्शन लिख दिया और कहा कि 'यह इन्जेक्शन तुरन्त दे दिया ‍ाय तो रोगीका बच जाना सम्भव है।' जहाँ घरमें खानेका ही ‍ोटा हो, वहाँ इन्जेक्शनके लिये पैसे कहाँसे आयें। मैंने तुरंत ‍ाक्टरके हाथसे कागज ले लिया और एक किरायेका रिक्सा लेकर ‍न्जेक्शन लानेके लिये मैं मेडिकल-स्टोर्सकी ओर चल दिया। आधे ‍ास्ते पहुंचनेपर याद आया कि घरसे पैसे तो लाया ही नहीं, पर ‍नमें यह आशा हुई कि किसी अच्छे दूकानदारके पास जाकर ‍ारी परिस्थिति समझा दूँगा तो वह इन्जेक्शन दे देगा और मैं उसे ‍ीछे दाम दे आऊँगा। मैं एक अच्छे मेडिकल-स्टोरमें पहुँचा। वे ‍ाई खद्दरधारी थे और समझदार भी थे, ऐसा उनकी बोलचाल‍े लगा। मैंने इन्जेक्शन लेकर उनको सारी परिस्थिति समझा दी। ‍ुछ ही देरमें दूकानदार महोदयके चेहरेका भाव बदल गया और ‍धार न देनेकी बात कहते हुए 'terms cash' साइन बोर्डकी ओर ‍ेरी दृष्टि खींची। मैंने अपना परिचय देकर पता बताया, पर पैसे‍े पुजारी वे मेरी बात क्यों सुनने लगे। दिये हुए इन्जेक्शनको

मेरे हाथसे वापस लेते हुए उन्होंने कहा—'पैसा हो, तब ले जाइयेगा
उन्हें यों कहते जरा भी संकोच नहीं हुआ ।

मैं दूकानपर पहुँचा था, तब इन दूकानदार भाई ने कितन
सुन्दर प्रेमपूर्ण मानवताकी मुहर मुझपर लगायी थी । उसके सा
इस समयके इस कोरे व्यापारीकी तुलना नहीं हो सकती । पहल
मुहर धोकेकी चीज निकली और मैं इन्जेक्शन लिये बिना ही दूकान
से बाहर निकला ।

रिक्शेवालेने मेरे हाथमें इन्जेक्शन न देखकर सहज ही पूछा-
'भाई ! इन्जेक्शन ले आये ? मैंने सब हकीकत उसे सुना दी । औ
मेरे आश्चर्यके बीच, किरायेपर रिक्सा चलानेवाले तथा मुश्किल
दो रुपये रोज कमानेवाले उस रिक्शाचालक भाईने मेरे हाथमें द
रुपयेका नोट निकालकर रख दिया और कहा—'जाइये, इन्जेक्शन
ले आइये ।' मैं नोट लेते झिझका और मैंने बहुत-सी दलीलें की;
पर उसने इतना ही कहा—'दुःखके समय मनुष्य मनुष्यके काम न
आये तो वह मनुष्यके काम न आये तो वह मनुष्य कैसा ?' मैं
इन्जेक्शन ले आया और इस प्रकार एक रिक्शेवालेकी मानवताने
एक मरते मनुष्यको बचा लिया ।

मजदूरी करके पेट पालनेवाला रिक्शाचालक जन्मसे ही भला
था, इसलिये वह आजतक वैसा ही भला बना रहा । इधर, नाटक
करता हुआ वह व्यापारी समयपर मानवताकी नकाब फेंककर अपने
मूलस्वरूपमें आ गया ।

—महेश आच

वह कौन था ?

घटना को लगभग पद्रह वर्ष बीत चुके, किंतु वह आज भी स्मृतिपटपर नवीनकी भाँति अङ्कित है मेरे पूज्य पिता प्रधान अध्यापकके पद पर स्थानान्तरित होकर एक ग्राममें, जो मध्यप्रदेशके अन्तर्गत बीना जंक्शनसे ग्यारह मीलकी दूरी पर स्थित है, चले गये थे। उनसे मिलने मैं जा रहा था। साथ मेरे लघु भ्राता भी थे। हम दोनों भ्राता करीब साढ़े पाँच बजे दिनमें बीना जंक्शनपर ट्रेनसे उतरे। अब वहाँसे आठ मील पैदल चलना था। अतः पूछ-ताछ कर हमलोग रेलवे लाइनके किनारे-किनारे चले। मनमें भय था कि यहाँका मार्ग देखा नहीं है, अतः सायंकालतक ग्रामतक पहुँचना सम्भव नहीं है। बरसातका मौसम था, आठ मील गेट नं० ८ तक लाइन-किनारे जाना था। पश्चात् तीन मील वहाँसे ग्रामका मार्ग तय करना था। हमलोग लगभग दो मील आगे बढ़े होंगे कि एक पथिकने कहा—'भैया ! लाइन-किनारे होकर जानेमें तुम्हें बहुत चक्कर पड़ेगा; तुमलोग इस पगडन्डीसे जाओगे तो जल्दी पहुँच जाओगे।' अतएव उसकी बतलायी पगडडीसे हमलोग चलने लगे। कुछ दूर चलनेपर वह मार्ग समाप्त हो गया। अतः हमलोग पुनः वापस होकर लाइनके समीपसे राह तय करने लगे। उस समय सूर्यास्त हो चुका था। यह मुझे खूब स्मरण है—भयभीत हृदयसे ही समझिये, हम दोनों भ्राता बीना जंक्शनसे पैदलका मार्ग शुरू होते ही बारी-बारीसे 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' बोलते चल रहे थे। एक अर्द्धाली मैं कहता था, दूसरी मेरा

भाई। इस प्रकार प्रभु-नाम उच्चारण करते हुए हमलोग रात्रि लगभग आठ बजे मेमर खेड़ी गेट नं० ८ तक पहुँच गये। वहाँ कोई भी चौकीदार नहीं था, जिससे पूछकर निर्दिष्ट ग्रामतक पहुँचा जा सकता। अब यह निर्णय करना कठिन था कि ग्राम पहुँचनेके लिये किस दिशामें चला जाय। यहाँतक कि कोई प्रकाश भी किसी ओर दिखाई नहीं दिया। पश्चिमकी ओर सघन वृक्षोंको देखकर हमलोग कुछ दूर चले। मार्गकी बड़ी कठिनाई थी। जगह-जगह पानी भरा था। आगे बढ़नेको कोई मार्ग नहीं दिखायी दिया। अतः वापस गेटपर लौटनेके हेतु हम मुड़ना ही चाहते थे कि सामने अपने कंधेपर बड़ी लाठी रखे एक व्यक्ति दिखायी दिया। उसे देखते ही एक बार हमलोग तो डर गये, पर मैंने साहस करके पूछा—'भाई! तुम कहाँ जा रहे हो?' उसने स्नेहपूर्वक उत्तर दिया—'मेरी भैंस खो गयी है। उसकी खोजमें आगासौद जा रहा हूँ, तुम कहाँ जा रहे हो?' यह सुनकर मानों हमें प्राण मिल गये। सारी घबराहट दूर हो गयी। मैंने कहा—'हमें भी वहीं जाना है।' वे आगे होकर मार्ग-प्रदर्शन करते हुए बहुत आराममे हमें ले गये। मेरे लघु भ्राताको उन्होंने कंधेपर बैठानेका बहुत आग्रह किया, किंतु मैंने अस्वीकार कर दिया। हृदय उनके प्रति कृतज्ञतामे भर रहा था। वहाँ पहुँचते ही मैं पिताजीसे मिलकर कुछ मार्गकी कठिनाइयोंका वर्णन करने लगा। फिर बाहर आकर देखता हूँ तो वहाँ कोई व्यक्ति नहीं था। न कानीहौसमें कोई भैंस ही आयी थी। आज भी सोचता रहता हूँ कि वह कौन था—मानव, भगवान् या भगवन्नाम?

—रामकृष्ण बं

मैं तुम्हारा मित्र हूँ

लगभग तीस वर्ष पहलेकी बात है—कलकत्तेमें एक दिन मैं अपने पड़ोसी मित्र रामप्रतापके साथ गङ्गा नहाने जा रहा था। रास्तेमें भीड़ थी; हम लोगोंके स्वभावमें कुछ उद्दन्डता तथा अल्हड़-पन था। जवान उम्र, घरमें पैसे, किसीका नियन्त्रण नहीं। हम दोनों गङ्गा स्नानके पुण्यके लिये नहीं, मौजके लिये नहाने जाया करते थे। रास्तेमें मनमाना बोलते—हँसते, राह चलतोंकी दिल्लगियाँ उड़ाते चलते थे। रास्तेमें कीचड़ था। एक सज्जन कुछ अधेड़ उम्र-के, चश्मा लगाये हमारे आगे-आगे जा रहे थे। शायद कुछ श्लोक पाठ कर रहे थे। मैंने उनको तंग करनेके लिये छेड़खानी की। उन्होंने मुड़कर हमलोगोंकी ओर देखा और मुस्कराकर शान्तिसे चलने लगे। हमलोग तो उनकी शान्ति भङ्ग करना चाहते थे, अत एव बेमतलब अनाप-शनाप बकने लगे। इसपर भी उनकी शान्ति भङ्ग नहीं हुई। वे बीच-बीचमें हमारी ओर देखकर मुस्करा देते। पर हम-लोगोंकी उद्दण्डता उनकी हँसीको कैसे सह सकती थी। मैंने बगलसे निकलकर कोहनीसे बड़े जोरसे धक्का दिया, वे कीचड़में गिर पड़े और मैं ठहाका मारकर हँस पड़ा। इतनेमें देखा—मेरा साथी रामप्रताप भी फिसलकर गिर पड़ा है। शायद उन सज्जनके गिरनेकी खुशीमें वह अपनेको सँभाल न सका हो और उसका पैर फिसल गया हो। लोग इकट्ठा हो गये। कीचड़में लथपथ वे सज्जन उठकर खड़े हो गये। उनका चश्मा टूट गया था। धोती, चद्दर, नहाकर पहननेको

लाये हुये कपड़े, सारा शरीर कीचड़से लथपथ हो गया था। उनके काँचकी नाकपर एक खरौंच लगी थी। शायद और अङ्गोंमें भी चोट लगी हो। उन्होंने उठते ही मेरी ओर देखा, फिर पासही गिरे हुये मेरे साथी रामप्रतापको सँभालकर उठाने लगे। रामप्रताप के दाहिने हाथमें काफी चोट आयी थी। वह बहुत बेचैन था। उन्होंने तथा मैंने बड़ी कठिनतासे उसे उठाया। वह वेदनाके मारे अत्यन्त व्याकुल था।

कुछ दूर खड़े कांस्टेबलको उन्होंने पुकारा। पुकारते ही वह आया और उन सज्जनकी ओर देखकर तथा मानो उन्हें पहचानकर उसने बड़े अदबसे सलाम किया और आज्ञा माँगी—'क्या करूँ?' उन्होंने शान्तिपूर्वक कहा—'एक घोड़ागाड़ी लाओ, इन्हें अस्पताल ले जाना हैं।' कांस्टेबलने बड़े सम्मानसे कहा—'हुजूरके कपड़े भी कीचड़से भर गये हैं। हुजूर गङ्गास्नानको पधारें। मैं अभी थानेसे दरोगाजीको कहकर और सिपाही ले आता हूँ। हुजूर हुक्म दें तो दरोगाजीको ही ले आऊँगा और इनको अस्पताल ले जाऊँगा। इलाजकी सब व्यवस्था हो जायगी।' मैं समझ गया कि ये सज्जन पुलिसके कोई बड़े अधिकारी हैं। मैं रो पड़ा और थर-थर काँपने लगा। मैंने उनके पैर पकड़ लिये। उन्होंने हँसते हुए कहा—'भैया! तरुणावस्थामें अल्हड़पन हुआ ही करता है। आप डरिये नहीं। हाँ, भविष्यमें इतना ध्यान रखिये कि जिसमें अपना तथा किसी भी दूसरेका किसी प्रकार भी नुकसान या अहित होता हो वैसी अल्हड़ता मत किया कीजिये।' मुझसे इतना कहकर उन्होंने कांस्टेबलसे कहा—तुम ड्यूटीपर हो, इसलिये थाना जानेकी जरूरत नहीं है। सिर्फ एक घोड़ागाड़ी ले आओ। इनको मैं ही अस्पताल

ले जाऊँगा। सहायताके लिये इनके साथी ये सज्जन मेरे साथ जायँगे ही।'

मेरी विचित्र दशा थी। शरीरमें पसीना आ रहा था। डर तो था ही। साथ ही इन देवता पुलिस-अफसरके वर्तावसे मैं आश्चर्य-चकित था और मैं यह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा था कि मेरा स्वभाव या जीवन ही बड़ी तेजीसे बदल रहा है। मुझे अपनी करनीपर पश्चात्ताप था। भविष्यमें वैसा कोई भी कर्म न करनेकी मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की। मेरा मन उन देव-मानवके चरणोंके प्रति भक्तिश्रद्धासे अवनत हो रहा था।

गाड़ी आयी। मैंने तथा उन्होंने रामप्रतापको सहारा देकर गाड़ीपर चढ़ाया। वे उसी कीचड़-सने शरीरसे अस्पताल पहुँचे। उन्हें कोई लाज-शरम नहीं आयी। उन्होंने वहाँ अपना परिचय दिया, तब पता लगा कि वे पुलिस-कप्तान (सुपरिंटेंडेंट) हैं और बड़े सम्भ्रान्त कुलके सज्जन हैं।

डाक्टरोंने बड़े सम्मानके साथ उन्हें बैठाया। हाथ-पैर धुलवाये। उन्होंने कहा—हम दोनों ही कीचड़में रपट कर गिर गये।' राम-प्रतापकी समुचित चिकित्सा हुई। हड्डी नहीं टूटी थी। दवा लगा-कर पट्टी बांध दी गयी। एक दूसरी घोड़ागाड़ी मँगवाकर उन्होंने हम दोनोंको विदा करते हुए कहा—'भाई! डरना नहीं। मुझे तो बड़ा दुःख इस बातका है कि आप लोगोंका मजा इन्हें चोट लगनेसे किरकिरा हो गया। मैं ही गिरा होता तो मेरा कुछ बिगड़ा नहीं था और आपका मनोरंजन हो जाता। मैं तो गङ्गास्नान करने जा ही रहा था। कीचड़ वहाँ धुल जाता। पर भाई! जैसा मैंने इनसे कहा है, ऐसे मनोरंजनकी चेष्टा मत किया करो, जिससे आपकी

तथा दूसरेकी हानि हो या अहित हो । मुझे अपना मित्र मानकर सचमुच तुम मेरे मित्र हो और मैं तुम्हारा मित्र हूँ । कभी कोई मेरे योग्य कार्य हो तो निःसंकोच मिलना । मेरा ×××× नाम है।

हम तो सुनकर चकित हो गये । मैंने भक्तिविनम्र स्वरसे उनके चरणोंमें प्रणाम किया । सचमुच वे हमारे यथार्थ मित्र ही थे और मित्र ही बने रहे । उनसे शुभकी ओर जीवन-परिवर्तनमें समय-समय पर बड़ी सहायता मिली । मित्रका धर्म ही है—

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा ।

हमलोगोंका जीवन—जो हजारों उपदेश-वाक्योंसे अबतक नहीं बदला था और आगे भी नहीं बदल सकता था; क्योंकि हमें अपनी उद्दण्डताके सामने न किसीका उपदेश सुननेकी फुरसत थी न श्रद्धा ही थी—आज इन देवपुरुषके आचरणसे अकस्मात् बदल गया और तबसे हम भी बदल गये ।

—गजानन श



विलक्षण सद्व्यवहार

जगन्नाथजी और महानन्दजी सगे भाई थे। बड़ा प्रेम था। घरका बँटवारा हो चुका था; परंतु परस्पर कोई भी स्वार्थजनित भेद नहीं था। बड़े भाई जगन्नाथजीकी मृत्यु होनेके बाद उनके पुत्र सम्पतरामने अपने चचा महानन्दका एक बार कहना नहीं माना, बड़ी बुरी तरह पेश आया और उनकी इच्छाके विपरीत कोई ऐसा काम अपने मनसे कर लिया, जिससे उनके कुलकी प्रतिष्ठामें बड़ा धब्बा लगता था। इस बातको लेकर बड़ा मनमुटाव हो गया और वह यहाँतक बढ़ा कि दोनों परिवारोंमें परस्पर बोलचाल बंद हो गयी। बोलना बंद भी पहले सम्पतरामने ही किया।

एक बार किसी झूठे मुकदमेमें सम्पतराम फँस गया और पकड़ लिया गया। भाग्यवश सम्पतरामकी आर्थिक स्थिति उस समय बहुत कमजोर हो गयी थी। मामला था तो झूठा, पर बड़ा संगीन था। जमानतकी बड़ी चिन्ता हुई। चचा महानन्द सब प्रकार समर्थ थे, पर उनसे वह सहायताके लिये कैसे कहता। उसके मनका भाव यही था कि कहनेपर भी महानन्दजी सहायता नहीं करेंगे; क्योंकि वह उनका बड़ा अपमान कर चुका था। फिर महानन्दजी वहाँ थे भी नहीं। सम्पतरामने अपनेको सर्वथा असहाय अनुभव किया।

महानन्दजीको उनके लड़के लक्ष्मीनारायणने तारद्वारा समाचार भेजा। लक्ष्मीनारायणके मनमें सहानुभूति नहीं थी। उसने केवल

सूचना दी थी। सूचना देनेमें भी उसका क्या अभिप्राय था, न नहीं। पर सूचना मिलनेकी देर थी, महानन्दजी पहली ट्रेनसे आ और सीधे कोर्टमें जाकर उसकी जमानत ली और छुड़ाकर आ ही गाड़ीमें सम्पतरामको घर ले आये। सम्पतरामकी विचित्र द थी। वह अपनी करनीपर पश्चात्ताप करता हुआ रो रहा था महानन्दजी पहले बोले। कहा—'बेटा! घबराओ नहीं। तुम न बोलते थे—मैं भी नहीं बोलता था। पर इससे तुम पराये थोड़े हो गये थे। बड़े प्यारसे महानन्दजीने सम्पतरामके सिरपर हा फेरा। उसे नहला-धुलाकर चाचा-चाचीने अपने पास बैठाकर स्नेह भोजन कराया। उसकी पत्नी तथा बच्चोंको भी बुला लिया गया

अच्छे वकीलोंकी नियुक्ति की गयी। मामला संगीन होने भी झूठा था। इससे सम्पतराम बेदाग छूट गया। चाचा-चाचीक बड़ी खुशी हुई।

इसके बाद महानन्दजीने सम्पतरामको फिरसे पैतृक सम्पत्ति और कारोबारमें हिस्सेदार बना लिया। दरिद्रावस्थाको प्राप्त सम्पतराम पुनः लखपती हो गया। अब तो सम्पतराम अपने चाच श्री-महानन्दजीको ईश्वरके तुल्य मानकर उनकी रुचिका अनुसर करने लगा।

इस व्यवस्थासे सम्पतरामको सुखी देखकर चाचीको सब अधिक प्रसन्नता हुई; क्योंकि सम्पतरामकी माताका बहुत छो अवस्थामें देहान्त हो गया था। सम्पतरामको चाचीने ही बड़े ला चावसे पाला था। सम्पतराम भी उसे माँ ही मानता और कह

। संगदोषसे बीचमें बुद्धि बिगड़ी थी। अब इस विपत्ति तथा
ात्तिके समय किये हुए चाचा-चाचीके अतुलनीय सद्व्यवहारने
की बुद्धिको पुनः सात्त्विक बना दिया। सारी दोषाग्नि चाचाकी
ह-सुधावर्षासे सदाके लिये शान्त हो गयी।

लक्ष्मीनारायणको पहले कुछ यह व्यवस्था प्रतिकूल-सी लगी; तु पीछे वह भी समझ गया और सारा परिवार दिव्य आनन्द-ुद्रमें लहराने लगा।

—राम कुमार गुप्त



क्रोधपर विजय

यद्यपि मैंने सत्यके सम्बन्धमें अध्ययन किया है और उस स्वरूपको समझती भी हूँ, फिर भी अपने सप्तवर्षीय पुत्रके प्र मेरे स्वभावमें बड़ा क्रोध भर गया था। जबसे उससे घुटनोंके ब चलना आरम्भ किया, तभीसे वह कुछ ऐसी चेष्टाएँ करने लग जिससे मुझे क्रोध आ जाता। शुभकी शक्तिमें मेरा विश्वास होनेप भी उसके प्रतिकूल तथा शान्तिके लिये प्रार्थना करते रहनेपर भी मैं उसपर बरस पड़ती (कभी-कभी तो पीटने भी लग जाती)। मैं प्राय: आपेसे बाहर हो जाती।

मैं जानती हूँ कि मेरे क्रोधी स्वभावने ही मुझे एक असाध्य चर्मरोग प्रदान कर दिया, जिसे मैं पाँच वर्षोंसे भोगती आ रही हूँ। मेरे छोटे बच्चेको भी नासूर हो गया, जिससे वह बीच-बीचमें बहुत कम सुनने लगा। यह जानते हुए भी कि हमारे विचारोंका हमारे शरीरपर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है, मैं अपने क्रोधपर विजय नहीं पा सकी। वास्तवमें क्रोधका कारण मेरे पुत्रकी चेष्टाएँ उतना नहीं थीं, जितना उन चेष्टाओंसे भभक उठनेकी मेरी प्रकृति।

गत वर्ष लेन्ट नामक व्रतके आनेके पहले मैंने क्रोधपर विजय प्राप्त करनेका निश्चय किया। मेरे कई मित्रोंने उस पर्वपर अमुक अमुक वस्तुओंका परित्याग करनेकी बात कही, तो मैंने क्रोधके परित्यागका संकल्प किया।

लेन्टके प्रथम दिन ही मैंने अपने बच्चोंसे कहा कि 'मैंने अब भगवान्‌को क्रोध न करनेका वचन दे दिया है और अपने वचनपर

दृढ़ रहनेके लिये मुझे समस्त परिवारकी सहायता आवश्यक है ।' बच्चे बड़े प्रभावित हुए और एक सप्ताहतक—पूरे एक सप्ताहतक घरमें सुख-शान्तिका राज्य रहा ।

फिर पहली स्थिति आने लगी । बच्चोंने फिर अपनी छेड़खानी शुरू की; साथ ही जो काम उन्हें करने चाहिये थे, उन्हें करना छोड़ दिया । इधर मुझे भी अपना पारा चढ़ता हुआ लगा । मैं प्रायः उच्च स्वरमें पुकार उठती, 'भगवन् ! कृपा करके मेरी सहायता करो, जिससे मुझे क्रोध न आये ।' तथा जब स्थिति सरल बन जाती और फिर सुव्यवस्था छा जाती, तब मैं पुनः निश्चय करती —'मैं क्रोध नहीं करूँगी' और फिर कहती, 'प्रभु ! तुझे धन्यवाद है ।'

बच्चोंने भी मेरे संकल्पका समर्थन करना आरम्भ किया । मैं सुनती कि वे अपने सोनेके कमरेमें कह रहे हैं, 'आओ, और कुछ करनेके पहले हम अपने बिस्तरे ठीक कर लें, जिससे भगवान्के सामने दिये हुए अपने वचनको माँ निभा सके ।'

अब हमारे घरमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है । कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि क्रोधको दबाये रखनेके अपने निश्चयपर जब मैं अडिग न रह सकती, तब मैं सचमुच अपने बच्चोंके सामने घुटने टेककर भगवान्से अपनेको तथा जिस बच्चेके कारण क्रोध आया होता, उसको क्षमा करनेके लिये प्रार्थना करती । फिर मैं बच्चोंके साथ बैठकर बात करती, मैं उनसे कहती—'तुम लोग मुझे वैसे ही क्षमा करो, जैसे कि मैंने तुम लोगोंको क्षमा कर दिया है ।' और फिर उनको बताती कि 'हमारे परस्परके क्षमादानके कारण भगवान्ने भी हमको क्षमा कर दिया है !' इसके परिणाममें हमको स्वर्गीय सुख मिला है ।

और हाँ, चर्मरोगमें भी सुधार दिखायी दे रहा है। हमें कुछ ऐसी क्रियाएँ बतायी गयी थीं, जिनके फलस्वरूप मेरे बच्चेका नासूर भी अच्छा हो रहा है और उसकी श्रवणशक्ति अब प्राय ठीक है। इसमें संदेह नहीं कि इस सुधारके यथार्थ कारणको हम जानते हैं और हमारा हृदय कृतज्ञतासे परिप्लुत है।*

—एम० एस० (एक अमेरिकन महिला



* मानसिक भावों, विचारों तथा क्रियाओंका शरीरपर न्यूनाधिक रूप बड़ा प्रभाव पड़ता है। 'काम'के विचारोंसे पागलपन, नपुंसकता, मधुमेह और प्रमेहके रोग उत्पन्न होते हैं। विषाद, भय और निराशाके विचारोंसे शरीर अशक्ति, कम्पन, अनिद्रा, सिरदर्द आदि, क्रोधके विचारोंसे पामा (एकजिमा कुष्ट, हृद्रोग आदि, लोभके विचारोंसे अपचन, उदरव्याधि, यकृत, शूल आदि इसी प्रकार अन्यान्य कुविचारोंसे विभिन्न रोग उत्पन्न होते तथा बढ़ते हैं। इस तरह शम, दम, तितिक्षा, क्षमा, त्याग, भगवद्विश्वास, आत्माकी नित्य पूर्ण निरामयता और अमरताके विचारोंसे रोग-नाशके साथ ही विलक्षण स्वस्थ प्राप्त होती है। —सम्पाद

भगवान्‌की सर्वसमर्थ कृपाशक्ति

गत सप्ताह अचानक एक खर्चा आ गया, इससे कुछ बँधे आवश्यक खर्चके लिये रुपयोंकी कमी पड़ गयी। जब मैंने अपने बैंककी किताब सँभाली तो पता लगा कि जितने रुपयेकी आवश्यकता थी, बैंकमें उससे कम ही हैं। मैं व्यग्र हो उठा, किंतु फिर मेरा मन भगवानकी सर्वसमर्थ एवं सर्वव्यापिनी कृपाशक्तिकी स्मृतिसे भर गया। मुझे विश्वासपूर्वक निश्चय हो गया कि भगवान्‌को मेरी आवश्यकताका पता है और वे उसे पूरी करेंगे।

लगभग दो घंटे बाद एक युवक, जिसने कुछ मास पूर्व मेरे लिये कुछ काम किया था, मेरे घर आया। मैं तो एकदम आश्चर्य-चकित रह गया। गत वर्ष बड़े दिनोंके समय पहले वह मुझसे विदा हुआ था। तबसे उसका कोई समाचार नहीं मिला था। इसलिये मैं सोचता था कि वह किसी दूसरे प्रान्तमें रहता होगा। उसने नमस्कार करते हुए पचास डालर मेरे हाथपर रख दिये। महीनों पहले जब वह मुझसे विदा हुआ था, उससे पहले ही उसने मुझसे रुपये उधार लिये थे। मैं यह तो जानता था कि उसके पास पैसे आते ही वह मुझे लौटा देगा, किंतु यह नहीं जानता था कि यह कार्य ठीक उसी समय होगा, जब कि उसके द्वारा मेरी आवश्यकता-की पूरी-पूरी पूर्ति होगी।

—आर० जी० आर० (एक अमेरिकन सज्जन)



सच्ची मानवता

घटना सात वर्ष पहलेकी है । उस समय मैं अपने कामके लिये बीच-बीचमें फर्रुखाबाद जाया करता था । सूती तथा रेशमी कपड़े की छपाईके लिये यह नगर प्रसिद्ध है । यह काम प्रधानतया एक ही कौमके हाथमें है । उन्हें 'साध' कहते हैं । साध लोग डेढ़-दो सौ वर्ष पहले राजस्थानसे आकर यहाँ बसे थे । इस समय वे अधिकांश फर्रुखाबाद और मिर्जापुरमें रहते हैं । उनका जीवन सादा और शान्त होता है । वे प्रायः उच्च विचारके तथा अपने विचारों को जीवनमें उतारनेवाले होते हैं ।

एक दिन अचानक एक धनी साधका लड़का बस-दुर्घटनामें आकर मर गया । बसके मुसाफिरोंने आवेशमें आकर ड्राइवरको इतना मारा कि वह बेहोश होकर गिर पड़ा । इसी बीच खबर मिलते ही लड़केका वह धनी पिता तुरंत वहाँ आया और देखा कि लड़का मर गया है और ड्राइवर बेहोश पड़ा है । वह तुरंत किसीकी मोटर माँगकर ड्राइवरको अस्पताल ले गया और उसके इलाजकी व्यवस्था कराकर मरे हुए अपने लड़केके पास आया और तब उसने उसका अन्तिम संस्कार किया ।

दो-चार दिनों बाद किसीने पूछा—'तुमने यह क्या काम किया ? लड़केको मरा छोड़कर ड्राइवरको अस्पताल ले गये ?' तब उसने कहा—'मैंने बहुत ही ठीक किया । ड्राइवर गरीब आदमी है । मेरा लड़का वापस आ जाय, ऐसी आशा तो थी ही नहीं । ड्राइवरका जीवन बच सकता था । एक मर गया, एक बच गया । मेरे इस कार्यसे ईश्वर प्रसन्न होंगे और मेरे पुत्रकी आत्माको शान्ति मिलेगी ।' कलियुगमें भी सच्ची मानवता अभी मर नहीं गयी है ।

—जेठालाल कानजी गा[illegible]



मानवताका झरना

यहाँ रातको आनेवाली अन्तिम गाड़ीका समय बहुत ही अड़-चन-भरा है। साढ़े बारहका समय है और कहीं लेट हो गयी तो दो-ढाई बज जाते हैं। कुछ दिनों पहले हमारे एक मेहमान आनेवाले थे, इसलिये उन्हें लेने मैं स्टेशन गया था। पौषका महीना—इसपर ठंढी हवा—जाड़ेके मारे शरीरके रोंगटे खड़े हो रहे थे। भाग्यसे गाड़ी उस दिन लेट आयी। इससे तथा बहुत सर्दीके कारण बहुतसे ताँगेवाले लौट गये थे। सिर्फ छः-सात ताँगे थे। मुसाफिर ज्यादा और ताँगे कम—इससे उनके भाव बढ़ गये। डढ़के बदले पाँच रुपये हो गये। ताँगेवालोंको कुछ कम लेनेके लिये कहा, पर वे अपनी बातपर अडिग थे। मैं एक ताँगेवालेसे झकझक कर ही रहा था कि एक दूसरे ताँगेवालेने कहा—'चलिये बाबू ! मेरे ताँगेपर आइये, यह खाली है।' मैंने मन-ही-मन कहा—'तुम्हारा ताँगा तो खाली है, पर इधर मेरी जेब जो खाली है।'

'मैंने पूछा—'क्या लोगे ?'

'दो रुपये बाबू' ताँगेवालेने कहा।

'हैं ! क्या दिल्लगी कर रहे हो ?'

'बाबू ! आपसे मैं दिल्लगी करता ?'

इस ताँगेवालेने जब दो रुपये कहे, तब एक दूसरा ताँगेवाला इससे चिढ़कर कहने लगा—'यह महमदा ही भाव बिगाड़कर मुसाफिरोंको ले जाता है। किसी दिन इसको मजा चखाना पड़ेगा।'

हमलोग महमदेके ताँगेपर सवार हो गये। ताँगा चलनेपर मैंने पूछा—'महमद ! तुमने दो रुपये कैसे कहे ?'

'बाबू ! जरा खुदाका भी तो डर रखना चाहिये ? आपको परेशानीमें पड़े देखकर—आपकी परेशानीसे फायदा उठाकर आपसे दोके बदले पाँच रुपये लेना खुदाकी नजरमें बेइमानी होगी। खुदाकी मेहरबानीसे जब जरूरतके माफिक मिल जाता है, तब बेईमानी करके ज्यादा पैसे क्या करना है।'

एक मामूली आदमीके हृदयमें इस प्रकार मानवताका झरना बहता देखकर मेरा मन उसके सामने झुक गया। मैंने उसको बहुत दबाकर तीन रुपये दिये—वह एक पैसा भी अधिक नहीं लेना चाहता था।

—मधुकान्त भ



ईमानदारीका उत्तराधिकार

मोहनलाल और भानीराम दोनों हिस्सेदार थे । व्यापार करते थे । मोहनलालकी रकम लगती थी, भानीराम काम करता था । परस्पर बड़ा विश्वास था । खूब प्रेम था । व्यापारमें इतनी कमाई होती थी कि मोहनलालको अपनी रकमका पर्याप्त व्याज मिलकर भी कुछ बच जाता था । भानीरामके चार-पाँच बच्चे थे । बड़ा परिवार था, इससे कुछ बचता तो नहीं था, पर खर्चका निर्वाह अच्छी तरह होता था । कुछ वर्षों बाद मोहनलालकी इच्छा कारबार न करके अलग रहनेकी हुई । स्त्री-पुरुष दो ही थे । अवस्था बड़ी हो गयी थी । 'व्यापारमें कहीं घाटा लग जाय तो फिर कठिनाई होगी ।' इस विचारसे मोहनलालने भानीरामसे कह दिया कि 'मेरी रकम मुझे दे दो, तुम अपना व्यापार अकेले करो ।' व्यापार चल निकला था । अच्छी साख हो गयी थी, इससे कोई खास अड़चन नहीं थी । रकम दूसरे लोगोंसे उधार मिल सकती थी । भानीराम-की इच्छा नहीं थी । वह इस समय अलग होना नहीं चाहता था, जिसे वह बताना भी नहीं चाहता था । परंतु मोहनलालके विशेष जोर देनेपर भानीरामने बात मान ली । मोहनलालका हिस्सा निकाल दिया गया । उनकी असली रकम व्याज तथा नफेसमेत कुछ दिनोंमें दे दी गयी, फाड़खती लिख दी गयी । मोहनलाल पत्नी-सहित अलग रहने लगे ।

भानीरामका व्यापार चलने लगा । पर भानीराम उदास रहता ।

पाँच-छः वर्षों बाद भानीरामको संग्रहणीकी बीमारी हो गयी। द
की गयी, पर रोग बढ़ता ही गया। स्थिति बिगड़ गयी। तब ए
दिन उसने अपने बड़े पुत्र भगवानदासको एकान्तमें बुलाकर कह
'बेटा! मेरा शरीर अब नहीं रहेगा। पर मेरे मनमें एक चीज
बड़ा दुःख है। भाई मोहनलालकी हिस्सेदारीमें मैं काम करता
उन्हींकी रकम लगती थी, इसे तुम जानते ही हो। उनका मुझ
बड़ा विश्वास था। उन्होंने कभी भी लेखा-जोखा नहीं देखा।
जो कुछ बताया सो मान लिया। मैंने भी कभी विश्वासघात न
किया, न करना ही चाहता था। एक दिन तुम्हारे फूफा रा
कुमारजी आये। उनको व्यापारमें घाटा लगा था और उनका फ
फेल होने जा रहा था। उन्होंने दस हजार रुपये माँगे। मैंने स
स्थिति समझ ली। न देनेपर उनका फर्म अवश्य फेल हो जात
और वे सदाके लिये बर्बाद हो जाते। उन्होंने पहले कभी मोहन
लालजीसे अनुचित व्यवहार किया था तथा उनसे लड़ लिये थे
अतएव उनसे छिपाकर रुपये लेना चाहते थे। उन्हें मालूम होनेप
वे देते भी नहीं। मेरे पास अलग रुपये थे नहीं। मैंने रामकुमारजी
की बड़ी दयनीय दशा देखकर और शीघ्र ही वापस लौटा देने
वचन देनेपर उन्हें रुपये दे दिये। मैंने सोचा था, रामकुमारज
लौटा देंगे। पर वे लौटा नहीं सके। मैंने संकोचवश मोहनलालजी
कभी कुछ कहा नहीं। मेरे पास इतने रुपये अबतक हुए नहीं, नहीं
तो मैं जमा करवा देता। मोहनलालजीके अलग होनेके समय भी
मैंने उनसे कुछ कहा नहीं; पर रुपये तो उनके मुझको देने ही हैं
अपना कारबार अब ठीक चल रहा है। मेरा अनुमान है अगले छ
महीनेतक तुम्हारे पास उन्हें लौटनेके लिये इतने रुपये नफेके है

यें। अतएव मेरा अनुरोध है कि ज्यों ही तुम्हारे पास रुपये हों,
याजसमेत तुरंत जाकर लौटा देना। इससे मेरी आत्माको बड़ी
ान्ति मिलेगी। मैं तुम्हें उत्तराधिकारमें यह कर्तव्य भी दे जाता
। भाग्यकी बात है, अभी उस दिन मोहनलालजीके घर चोरी
ी गयी तथा जिनको उन्होंने कुछ रुपये दे रक्खे थे, उनका भी काम
बगड़ गया। अतएव उनका हाथ बहुत तंग हो गया है। वे बड़े
भभावमें हैं। तुम उन्हें रुपये दोगे तो उनको बड़ी प्रसन्नता होगी
और मेरी आत्माको बहुत सुख पहुँचेगा। सुपुत्र भगवानदासने
पताकी आज्ञाको सहर्ष स्वीकार किया। भानीरामजीका देहान्त
ो गया!

× × × ×

एक दिन मोहनलालजी अपनी पत्नीके पास बैठे थे कि भानी-
मके लड़के भगवानदासने उनके पास पहुँचकर दोनोंके चरणोंमें
ाम किया। दोनोंने शुभाशीर्वाद देकर कहा—'बेटा! तुमलोग
न्न रहो। मेरे तो दिन ही बदल गये हैं। आजकल खर्च चलन
श्कल हो रहा है। भाई भानीरामसे अलग न होता तो यह दशा
ीं होती। खैर!' भगवानदासने तेरह हजार चार सौ रुपयेके
टोंकी गड्डी उनके चरणोंमें रखकर मरते समय पिताकी कही हुई
ी बातें एक-एक अक्षर उनसे कह दीं। मोहनलाल सब सुनकर
ित हो गये। उनके नेत्रोंसे आँसू बह चले। उन्होंने बड़ी मुश्किलसे
लेने स्वीकार किये। दोनों (पति-पत्नी) ने भगवानदास तथा
रामके सारे परिवारको सैकड़ों आशीर्वाद गद्‌गदवाणीसे दिया।
—'बेटा! इस समय हमारी इस दुखी हालतमें तुमने ये रुपये

देकर बड़ा ही उपकार किया है। तुम्हारे स्वर्गीय पिता धन्य हैं। तो इन रुपयोंकी कोई कल्पना ही नहीं थी। उन्होंने घरमें कु बरते भी नहीं थे। फिर भी मृत्युके समय उनको इतना ख्याल रह वे तुमसे कह गये और तुम धन्य हो, सच्चे उत्तराधिकारी सपूत जो रुपयोंका जरा भी लोभ न करके ब्याजसमेत मुझे रुपये देने आ हो। भगवान् तुम्हारा भला करें। हमारा रोम-रोम तुम्हें आशीर्वा देता है। पर बेटा! मैं ब्याजके रुपये नहीं लूँगा, तुम वापस जाओ!

भगवानदासने कहा—"चाचाजी! मैं तो पिताजीके आज्ञानुसा ही कर रहा हूँ। आपके आशीर्वादसे मैं बहुत कमा लूँगा। ये रुप तो आपको रखने ही पड़ेंगे। पिताजीने आपके प्रति बड़ी कृतज्ञत प्रकट करते हुए मुझसे कहा था कि 'भाई मोहनलालजीके मुझपर बड़े उपकार हैं।' सो चाचाजी! हम उनके लड़के हैं। अतः उन जगह अब आप ही हमारे माता-पिता हैं। जबतक आपलोग जी हमारी सेवा स्वीकार करते रहें। आपके भोजनादिकी सारी व्यवस हम आपके पुत्र करेंगे और आपको कृपा करके हमारी प्रार्थना मान पड़ेगी।"

जैसे पिता, वैसे पुत्र! मोहनलाल और उनकी पत्नी दोनों आँसुओंकी धारा बहाते हुए सब स्वीकार कर लिया।

—तोलाराम



सच्ची मानवता और पड़ोसी-धर्म

देशमें दुर्दिन थे। हिंदू-मुसलमानोंमें जहाँ-तहाँ मार-काट मची थी। पड़ोसके एक गाँवमें, जहाँ हिंदुओंकी संख्या कम थी, मुसलमानोंने बड़े अत्याचार किये। घरोंमें आग लगा दी, सम्पत्ति लूट ली, बच्चों तथा बूढ़ोंतकको बेरहमीसे कत्ल कर दिया। बहिन-बेटियोंका धर्म भ्रष्ट करके उन्हें उड़ा ले गये। कोई भी जुल्म बचा नहीं। आस-पासके गाँवोंमें हिंदुओंमें बदले की दुर्भावना जागी। एक गाँवमें, जहाँ मुसलमानोंकी संख्या कम थी, हिंदू युवकोंने बदला लेना चाहा। उनका खून खौल रहा था। उन्होंने वैसे अत्याचार तो नहीं किये। स्वाभाव न होनेसे कर ही नहीं पाये। पर मुसलमानोंको, उनका सब कुछ छीन-छानकर भगा दिया। दो-तीन गुंडोंको मार भी दिया। आतंक छा गया। लाला लखपतरायके बगलमें ही एक मुसलमान बोहरेका घर था। घरके सब लोग भाग गये। घर लूट लिया गया। एक तरुणी लड़की बुखारके कारण न भाग सकी, उसको उसकी तकदीरपर घरवाले छोड़ गये। वह घरके पीछे खड़ी काँप रही थी। कुछ हिंदू गुंडे उसे पकड़ना चाहते थे। उसने पीछेसे लाला लखपतरायकी पत्नीको पुकार कर कहा—'चाची! मुझे बचाओ।' लाला लखपतरायकी पत्नीने करुण आवाज सुनी। उसने दौड़कर लखपतरायजीसे कहा, जो बाहर उपद्रव शान्त करनेमें लगे थे। वे दौड़े आये और लड़कीसे बोले—'बेटी! डर मत, तेरी चाचीके पास चली आ। तेज मिजाजके जोश भरे कुछ हिंदू युवक यह नहीं चाहते थे, उन्होंने रोकना चाहा; पर लाला लखपतरायजीने उनसे कहा—

'देखो भैया ! यह मेरी धरमकी बेटी है, अतः तुमलोगोंकी ब
है, अब इसकी ओर बुरी नजरसे ताकना बहिनकी ओर ता
है । तुम मेरी बात मानकर चले जाओ ।' यद्यपि वे तरुण यह चा
नहीं थे, पर लाला लखपतरायजीको सब मानते थे गांवमें
कोई भी मनुष्य नहीं था जो लालाजीके सद्व्यवहारोंके सामने
न झुकता हो और उनके उपकारोंका ऋणी न हो । वे सब
गये । लड़की तो पहले ही चाचीके साथमें घर आ गयी थी । यह
नहीं होगा कि उन्होंने बेटीके समान ही सहज-स्नेहसे उसे घर
रक्खा और उपद्रव शान्त होनेपर पता लगाकर उसके रिश्तेदारो
पास सुरक्षित पहुँचाकर सच्ची मानवता और पड़ोसी-धर्मका आद
परिचय दिया ।

—लेखराज मे



दिल्लीका ईमानदार मजदूर

उस दिन दिल्ली स्टेशनपर हमलोग उतरे। सामान बहुत था, लिये एक रिटायरिंग रूम किरायेपर लेकर उसमें रखवा दिया। लोग सब आवश्यक सामान साथ लेकर मोटरोंपर सवार हो गये। ण्डत श्रीगोवर्धनजी भी सपरिवार उसी ट्रेनसे साथ आये थे। होंने भी कुछ सामान रिटायरिंग रूममें रखवा दिया। एक पेटी— समें उनके ठाकुरजी तथा कुछ जोखिमकी चीजें भी थीं और स्तर कुलीके सिरपर रखकर वे बाहर आ गये। मोटरें जानेवाली । वे सामानकी बात भूल गये, कुली शायद आगे-पीछे रह गया और पत्नीसहित मोटरपर सवार हो गये। नयी दिल्लीमें पहुँच- जब सामान देखा तो नहीं मिला। मिलता कैसे, वह तो रखवाया नहीं था। बड़ी निराशा तथा चिन्ता हुई। सामान मिलनेकी शा बहुत कम थी। वे वापस स्टेशन जाकर इधर-उधर ढूंढ़ने । इतनेमें किसीने पुकारा—'बाबूजी ! इधर आइये, यह अपना मान सँभालिये। इन्होंने जाकर देखा, कुली बेचारा सामान रक्खे ा है। उसने कहा, मैंने आपको ढूंढ़ा, आप मिले नहीं, तबसे मैं र देख रहा हूँ।' सारी चीजें पण्डितजीको सुरक्षित मिल गयीं। ी प्रसन्नता हुई। कुलीको एक रुपया उन्होंने इनाम दिया। ल्लीके कुली—जहाँ बहुत बदनाम हैं, वहाँ इस गरीब कुलीकी यह भुत ईमानदारी वहाँके कुलियोंके प्रति सद्भाव तथा श्रद्धा पैदा ती है।

—कृष्णचन्द्र अग्रवाल



सद्गुरुकी महिमा

छः साल पहलेकी बात है, जिस समय हम कलकत्तेके 'नि जाला' विभागमें रहते थे। जिस मकानमें हम रहते थे, वहाँ बिज नहीं थी और आस-पासका प्रदेश बिल्कुल देहाती मालूम पड़ता था इसलिये कोई अच्छा-सा मकान ढूँढ़नेका विचार चल रहा था।

हर शनिवारके दिन मेरे पति आफिससे दो बजेतक घर लौ आया करते थे। परंतु उस शनिवारको आफिस जाते समय बोले 'मैं आज आफिससे सीधा एक मकान देखने जाऊँगा। आनेमें पाँ बज जायँगे।'

ये आफिस चले गये। दुपहरमें दोसे पाँच बजेतकका समय मैं सिलाई, कढ़ाई वगैरहमें बिताया। पाँच बजनेके बाद मैंने इनकी राह देखना शुरू किया। छः साढ़े छः हो गये, तब मैं चिन्ता कर लगी। फिर भी मनमें सोचती रही कि थोड़ी देरमें तो आ ही जायँगे पर सात बजनेके बाद मुझसे नहीं रहा गया। मनमें तरह-तरहके कुविचार आने लगे और आँखोंसे आँसू गिरने लगे। आध घंटा मैं खूब रोयी। रोते-रोते सोचने लगी—'यदि रातभर ये घरमें नहीं लौट सके तो मेरा क्या होगा। कलकत्तेमें मैं तो बिल्कुल नयी हूँ। इनको ढूँढ़ने जाऊँ? सुना है इस शहरमें एक्सीडेन्ट (दुर्घटना) भी बहुत होते हैं। पिताजीको तार देने जाऊँ तो मुझे पोस्ट-आफिस का रास्ता भी ठीक मालूम नहीं था। और इधर रात होनी जा रही थी।

साढ़े सात बजे मेरा रोना कुछ कम हुआ। मुझे कुछ ख्याल ाया। घरमें गुरु महाराजका एक छायाचित्र (फोटो) था, जिसकी मनोभावसे पूजा करते थे। मैंने गुरु महाराजको कभी देखा नहीं ा, इसलिये मेरे मनमें उनके प्रति कोई भक्ति नहीं थी। परन्तु सके साथ मैं भी प्रतिदिन फोटोको प्रणाम अवश्य करती थी। उसी ोटोकी मुझे रोते-रोते याद आ गयी। मैं फोटोके पास जाकर प्रणाम रके बोली—'यदि गुरु महाराज सच्चे होंगे तो ठीक आठ बजे पने भक्तको यानी मेरे पतिको घरमें पहुँचा देंगे। आठ बजेतक दि इनका आना न होगा, तब तो मैं इन गुरु महाराजपर कभी वश्वास नहीं करूँगी।'

बस, इतना कहकर मैंने घड़ी गुरु महाराजके फोटोके सामने ख दी और मैं दीवालके पास जाकर बैठ गयी। घड़ीकी सूई अपनी तिसे चल रही थी। इधर मेरे मनकी अस्वस्थता बढ़ती जा रही ी। इतनेमें पौने आठ हो गये। अब पद्रह मिनटमें गुरुपर विश्वास रना या न करना—इसका फैसला मैं करनेवाली थी।

आठ बजनेमें पाँच मिनट रहे तब मेरे मनमें विचार आया कि ब ये नहीं आ सकते। और इतना सोचते ही मैंने आँखें बंद कर ीं। एक ही मिनट बाद मेरे कानोंमें इनके पैरके जूतोंकी आवाज ायी। मैंने आँखें खोलीं। मैं विश्वास न कर सकी अपनी आँखोंपर न्होंने मेरी रोयी-सी सूरत देखी और कहा—'तुम रो रही थी यों ? क्या करूँ, मुझे बहुत देर हो गयी ! मैं ठीक समयपर घर हीं लौट सका।'

मैंने इनकी बातोंपर ख्याल नहीं किया। इनको देखते ही मेरी जर घड़ीकी ओर गयी। आठ बजनेमें सिर्फ तीन मिनट बाकी

थे। एकाएक मेरी नजर गुरु महाराजके फोटोपर गयी और उनमें पर सिर रखकर प्रणाम किया। गुरुचरणोंमें मेरा यही सर्वप्र भक्तिपूर्ण प्रणाम था। तबसे गुरुचरणोंमें मेरी श्रद्धा दृढ़ हो गये फिर मैंने इनको सारी कहानी सुनायी। ये बोले—'अरे रे! गुरुमहाराजको तुमने कितना कष्ट दिया। अरे, इस तरह गुरुकी परीक्षा नहीं ली जाती। गुरुचरणोंमें मन-ही-मन विश्वास करना चाहिये।' फिर प्रणाम करके बोले—'सद्‌गुरुनाथ! मेरी पत्नीका अपराध क्षमा कीजिये।'

—श्रीमती तारा पण्डित,



गंगाजलका प्रभाव

यों तो आयुर्वेदमें गङ्गा-स्नान एवं उसके जलपानका विशेष ाहत्त्व बताया गया है; किंतु जिसकी चर्चा नहीं की गयी है, वह ी मेरे अपने व्यवहारमें प्रत्यक्ष हो गया है। बात यह है कि मेरे ेटमें अक्सर दर्द हो जाया करता था। उस समय 'सल्फा' दवाइयोंका ।चलन न हो सका था, जिसके कारण डाक्टरोंकी शरणमें जाना ावश्यक हो जाता था और उसके लिये अनावश्यक व्यय करते- रते मैं तंग आ गया था। एक बार गाँवमें हैजेका प्रकोप हो उठा, सलिये सभी कुओंमें 'ब्लीचिंग पाउडर' डाल दिया गया। फलस्वरूप ुएँका पानी पीना कठिन हो गया। बरसातका समय था, फिर भी ैंने गङ्गाजल (जो कि लाल रंग हो जाता है) पीना शुरू कर देया। स्वाद अच्छा लगनेके कारण मैं सालों वही पीता रहा और ह क्रम तबतक जारी रहा, जबतक मैं यहाँसे पटना न चला गया। हाँ होस्टलमें रहकर पढ़ रहा था, अतः गङ्गाजल पीना कठिन था। ी० ए० (आनर्स) करनेके बाद एम० ए० की पढ़ाई समाप्त होने- र आयी तो पेटमें पुनः दर्द आरम्भ हो गया। अब मैं समझ गया के इस छः सालमें दर्द न होनेका मुख्य कारण गङ्गाका पहलेका ीया हुआ पावन जल ही था, जिसका असर आजतक था। अतः ंने फिर गङ्गाजल पीना शुरू कर दिया (१९५२) और आज छः ालसे ऊपर हो रहा है—ईश्वरकी कृपासे आजतक मेरे पेटमें दर्द । हो सका है।

अबतक यह मेरा वैयक्तिक प्रयोग था, किंतु मैंने इसे अपने

गाँवके अन्य लोगोंको भी बताया और ईश्वरकी कृपासे उन्हें भ
लाभ हुआ है।

अतः आज मानव-समाजकी भलाईकी दृष्टिसे इसे आपके पा
भेज रहा हूँ कि धर्मकी दृष्टिसे न भी हो तो स्वास्थ्यकी दृष्टि
गङ्गाजलका सेवन बड़ा लाभप्रद है। इसे सभी जाति एवं सम्प्रदाय
के लोगोको व्यवहार करके अवश्य देख लेना चाहिये।

—रमेन्द्रप्रसाद सिंह 'विद्यार्थ



लन्दनके टैक्सीवालेकी सहृदयता

रूस और इंग्लैंडकी यात्रासे लौटी हुई एक विदुषी महिलाने अपना लन्दनका एक अनुभव सुनाया था। उसमें वहाँके टैक्सीवाले-की सहृदयताका एक बड़ा सुन्दर चित्र खींचा गया था। उन्होंने कहा——

'मैं लन्दनके एक बगीचेमें बैठकर पुस्तक पढ़ने लगी। पुस्तकमें इतना रस आया कि उसको पूरा करनेके बाद मैंने देखा तो रात्रि-के ग्यारह बजे थे। सारा लन्दन शहर आरामसे सो रहा था। शहर की ट्रामें तथा बसे बंद हो चुकी थीं। दूर राहपर नजर डालनेपर टैक्सीका भी मिलना मुश्किल था।

मेरा निवासस्थान बगीचेसे कई मील दूर था। अतः बिना सवारीके वहाँ जाना मेरे लिये अशक्य था। मैं खड़ी सोच रही थी कि क्या किया जाय। इसी बीचमें मुझे वहाँ खड़ी देखकर दूरसे एक टैक्सीवाला मोटर लेकर वहाँ पहुँचा और अत्यन्त विनयपूर्वक उसने मुझसे मोटरमें बैठनेके लिये अनुरोध किया तथा मुझे कहाँ जाना है, पूछकर नाम-पता नोट कर लिया। मोटर चली। रास्तेमें हमलोगोंने कोई बात नहीं की। ठिकानेपर पहुँचकर मोटर रुकी। दरवाजा खोलकर मोटरवालेने मुझे विनयपूर्वक उतारा और सलाम करके कहा—'मैडम! गुड नाइट!'

मैंने पूछा—'कितने पैसे दूँ?'

उसने कहा—'बहिन! कुछ भी नहीं देना है। आज रात्रिको

मैं आपको हमारे देशकी अतिथिके रूपमें यहाँ लाया हूँ। मैंने दे
—आप अकेली हैं; रातका समय है और घर जानेके लिये सवारी
की वाट देख रही हैं। मुझे कमाईकी आवश्यकता नहीं थी, परन्
लन्दनके टैक्सीवाले परदेशियोंके प्रति अपने कर्तव्यपालनमें स
तत्पर हैं, इसका विश्वास दिलानेके लिये ही मैं आपको यहाँ छोड़
आया हूँ। सलाम!'

इतना कहकर उसने शिष्टतापूर्वक अभिवादन किया और टैक्स
चला दी। उस दिन मैंने देखा कि पाश्चात्य संस्कृतिके लिये हम
चाहे सो कहें; परन्तु सभ्यता, ईमानदारी और नारी-सम्मानके लि
मैं सदा उनकी प्रशंसा करूँगी। भारतको पाश्चात्य प्रजासे ये गु
अवश्य सीखने चाहिये।

—शान्तिलाल दीनानाथ मे



सच्ची सर्राफी

एक साधारण व्यापारी था। उसका नाम था—सत्यदेव। इस छोटे-से व्यापारीने सच्ची तंगीके समय काम आवे, इसके लिये बचा-बचाकर दो सौ रुपये इकट्ठे किये और उन्हें धर्मचन्द नामक एक व्यापारीके यहाँ अमानत जमा करा दिया। इसके बाद धीरे-धीरे सत्यदेवका व्यापार बढ़ा और वह लाखोंका आसामी बन गया। शहरके पैसेवालोंमें उसकी गिनती होने लगी। पर सदा सबके एक-से दिन नहीं रहते। समय पलटा और सत्यदेव बड़े नुकसानमें आ गया। सारा कारबार नष्ट हो गया और दीवाला निकल गया—यहाँतक कि भोजनके लिये चिन्ता रहने लगी।

एक दिन सत्यदेव सोचने लगा—'क्या करूँ?' इतनेमें उसे याद आया कि धर्मचन्द सेठके यहाँ उसने दो सौ रुपये अमानत जमा करवाये थे। उसने बही उठायी और धर्मचन्द सेठका खाता निकालकर देखा, तब पता लगा कि दो सौ रुपयोंके नामके बदलेमें उनके दो हजार रुपये अपने खातेमें जमा हैं। उसे याद आ गया कि दो हजार रुपये उनसे खाते पेटे ब्याजपर उधार लिये थे और फिर एक पैसा भी उनको वापस दिया नहीं गया। बही नीचे रखकर सत्यदेव बड़े विचार और चिन्तामें पड़ गये।

ईश्वर के इच्छानुसार उसीसमय धर्मचन्द सेठका मुनीम दो सौ रुपये लेकर आया और रुपये सत्यदेवकी गोदमें रखकर बोला—'हमारे सेठने ये आपके अमानत रक्खे हुए दो सौ रुपये भेजे हैं और साथ ही यह कहलवाया है कि 'कभी काम पड़े तो याद कीजियेगा।

हमारे जो दो हजार रुपये आपमें बाकी निकलते हैं, उनके लि
चिन्ता न करें। वे रुपये तो व्यापारके लिये हमने ब्याजपर दि
थे। उन रुपयोंका आपके व्यापार खातेसे सरकारकी ओरसे जो
कुछ हिस्सा सबको मिलेगा, हमको भी मिल जायगा। ब्याजू रक
से अमानतके रुपयोंका कोई सम्बन्ध नहीं होता।'

धर्मचन्दकी जगह दूसरा व्यापारी होता तो वह अपने खाते
जमाखर्च करके बचे हुए १८००) पर ब्याज लगाकर जितनी रक
होती, उसको शीघ्र चुका देनेके लिये अपने मुनीमको इस दु
स्थितिमें भी सत्यदेवके पास भेजता !

—लल्लूभाई बकोरभाई पटे

कानूनी कर्तव्यसे ईश्वरीय कर्तव्यकी श्रेष्ठता

मेरे एक मित्रने एक तारबाबूकी ईश्वरीय कर्तव्यनिष्ठाका वर्णन सुनाया—'जैतपुरसे मेरा पडधरीको तबादला हो गया। पहले मैं अकेला ही वहां गया। एक दिन संध्याको मैं घूमकर आया तो घरपर एक अन्जान आदमीको मैंने खड़े देखा। उसने मेरा नाम पूछकर तुरंत कहा—'आपका पुत्र सख्त बीमार है और आपकी पत्नीने आपको अभी बुलाया है।' 'आप कौन हैं ? आपको कहाँसे खबर मिली ? किसने आपको समाचार भेजा ?' आदि मेरे एक ही साथके बहुत-से प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना ही उसने कहा—'ट्रेनका समय हो गया है, अतः जल्दी चलिये। अपने ट्रेनमें बात करेंगे।' मैं तुरंत चल दिया।

रास्तेमें उसने बतलाया—'मैं तार-आफिसमें काम करता हूँ। आपकी पत्नी का दिया हुआ तार मैंने पढ़ा। जल्दीमें वे 'लेट फीस' भरना भूल गयीं होंगी। अतएव कानूनसे वह तार आपको कल सवेरे मिलता। पर तार देरसे मिलनेका परिणाम मैं पहले भोग चुका हूँ। तार देरसे मिलनेके कारण ही मैं अपनी स्वर्गीया पत्नीसे अन्तकालमें न मिल सका था। उस दिनसे मैं इस प्रकारकी स्थितिमें अवैध रूपसे लोगोंकी सहायता करना चाहता हूँ। यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे आपको यह समाचार पहुँचाना मेरे लिये अपराध है। तो भी मैं तुरंत नौकरीके समयमें भी छुट्टी लेकर बसपर सवार हो यहाँ दौड़ा आया हूँ। ईश्वरने चाहा और सब भले-चंगे मिले तो मैं अपने इस प्रयत्नको सफल समझूँगा।'

कानूनी कर्तव्यसे मानवताकी भावना कितनी ऊँची है, इसक प्रत्यक्ष प्रतीति उन्होंने मुझे करवा दी। मैं आपका बड़ा ऋणी ह गया। मैं इस प्रकार कहने जा रहा था कि बीचमें ही उन्होंने मु रोककर कहा—'अपने विभागके द्वारा सौंपे हुए कर्तव्यका पाल करते-करते ही ईश्वरके द्वारा सौंपे हुए कर्तव्यका पालन करने सौभाग्य मुझे आपकी मार्फत मिला, इसलिये मैं आपका ऋणी हूँ

मैंने मन-ही-मन उनको नमस्कार किया। मेरे लिये उन आर्थिक नुकसान न हो, यह सोचकर मैंने उनको बस तथा ट्रेनक किराया देना चाहा, परंतु उन्होंने अस्वीकार करते हुए कहा- 'कर्तव्य-पालनके संतोषको पैसोंमें मत ढ़ाँको।' कैसी मानवता कर्तव्यका कितना सुन्दर अर्थ!

रात्रिको मैं ठीक समयपर पहुँच गया। मैंने देखा मेरा आत्म मानो अन्तिम श्वास खींच रहा है ''परंतु ईश्वर कितना दयालु है मेरे मिलनेके आनन्दसे अथवा ईश्वरीय संकेतसे उसके स्वास्थ्य तुरत सुधार दिखायी दिया और थोड़े ही दिनोंमें वह अच्छा ह गया। डाक्टरने भी इसे चमत्कार माना और कहा कि 'आप ठी समयपर न पहुँचे होते तो ऐसी आशा नहीं थी।'

आयुकी डोरी तो ईश्वरके हाथ है, यह सत्य है। परंत मनुष्यकी मानवताने ही मेरे पुत्रको बचाया, मुझे तो ऐसा ल है।

—एच० एच०

नवरात्र-व्रतकी महिमा

सन् १९२७ की बात है। अपनी मूर्खताके कारण ही सेंट जोन्स कालेज, आगरेकी दो सौ रुपये माहवारकी प्रोफेसरी छूट गयी थी। मुझे और मेरे परिवारको बड़ी परेशानी हुई। बुलन्दशहरमें वकालत शुरू की; पर मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं Teacher (शिक्षक) से Cheater (धोखेबाज) बन गया। फिरसे कालेजमें कहीं नौकरी मिले चाहे वह १००) माहवारकी ही हो—इस परेशानीमें और कुछ प्रायश्चित्तके रूपमें मैंने नवरात्र-व्रत रखनेका संकल्प किया। पूज्य माताजीने भी व्रत मेरे कल्याणके लिये रक्खा। व्रतके नियम-विधि-विधान इत्यादि मुझे कुछ नहीं आता था। दिनभर एकान्तमें बैठकर गायत्री-मन्त्र जपता रहता था। शामको फलाहार कर लेता था। सातवें दिन चित्तकी अपने-आप ही कुछ अच्छी-सी एकाग्रता हो गयी कि जब मैं पासके कुएँकी प्याऊमें बैठा हुआ जप कर रहा था, उसी समय किसीने भाई डाक्टरकी दूकानपर खबर दी कि हमारे घरमें आग लग गयी है। सभी पानी लेकर दौड़े। उसी प्याऊमेंसे मेरे पास ही रक्खे हुए सब पानीसे भरे घड़े और डोल इत्यादि लेकर शीघ्रतासे घर गये। अग्नि शान्त हो गयी! पर सच बात है कि मेरे कानोंमें न आग लगनेकी और न कुएँपरसे पानी ले जाने और न सबके घरको दौड़नेकी आवाजें पड़ीं और मैं अपने जपमें एकाग्रतासे लगा रहा। जप समाप्त होनेपर मुझे सबने दिखावटी, बनावटी, ढोंगी और मूर्ख कहा कि मैं आग बुझानेको

न दौड़ा। मैंने सबको विश्वास दिलाया कि मुझे जरा भी आ लगनेका भास होता तो मैं अवश्य ही मालाको फेंककर और छोड़कर आग बुझानेमें लग जाता—पर किसीको विश्वास क्यों हो लगा? सच बात तो यह है कि इन तीस वर्षोंमें भी मुझे एकाग्रताका बहुत प्रयत्न करनेपर भी फिर अनुभव आजतक न हो पाया। भविष्यकी प्रभु ही जानें। नौ दिनके व्रत बड़े आनन्द पूर्वक समाप्त हुए। आर्यसमाजी परिवारमें पले होनेके कारण मु विधिपूर्वक यह व्रत करनेका कुछ भी ज्ञान नहीं था और न कभ इसको जाननेका ही प्रयत्न किया था।

दसवें दिन, मुझे रात्रिमें स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णजीके दर्श हुए। उन्होंने मुझसे कहा कि 'बच्चे! गीता पढ़ो!' यह कहक वे अन्तर्धान हो गये।

दूसरे दिन, आर्यसमाजी होनेके कारण इस स्वप्नपर मैंने अ ध्यान न दिया। मैं श्रीकृष्ण भगवान्‌की महिमाको जानता ही था! मैं उनको अवतार भी नहीं मानता था। हाँ, उन्हें एक म योगिराज मानता था। पर आश्चर्यकी बात यह हुई कि स्व गीताके पढ़नेका आदेश देकर ही उनकी मुझपर कृपाका अन्त हुआ। तीसरे ही दिन, एक हमारे निकटके रिश्तेदार दिल बहुत-सी पुस्तकें खरीदकर लाये थे और नैनीताल जानेसे पह एक रातको हमारे यहाँ ठहरे। जाते समय वे अपनी सब पु साथ ले गये, पर भूलसे ज्ञानेश्वरी गीता मेरी मेजपर ही छोड़ ग जब एक दिन बाद मैंने ज्ञानेश्वरीको देखा और कुछ पढ़ा, तब स्वप्नकी फिर याद आयी कि भगवान् श्रीकृष्ण महाराजने मुझे गीता पढ़नेका ही आदेश नहीं किया, बल्कि अपनी म

कृपासे गीता भी मेरे पास भेज दी। उसे पढ़ते-पढ़ते ही मैं मूर्ति-खण्डकसे मूर्तिपूजक न जाने कैसे बन गया और तबसे शायद कोई गीताकी पुस्तक ही ऐसी रही हो, जो मैंने न पढ़ी हो। सिवा उसके पढ़नेके मुझे किसी और विषयकी पुस्तक पढ़नेमें आनन्द ही नहीं आता—यह सच बात है। नवरात्र-व्रतके समाप्त होनेके दस दिन बाद मेरी 'श्रीराम कालेज आफ कामर्स' दिल्लीमें १५०) माहवार-पर प्रोफेसरीके पदपर नियुक्ति हो गयी। चार वर्ष हुए वहाँसे ६४०) माहवारी पाते हुए मैं रिटायर हुआ था और उसके पश्चात् यहाँ जम्मूमें एक डिग्री कालेजका प्रिंसिपल हूँ।

लिखनेका अभिप्राय यही है कि नवरात्र-व्रतसे मेरे सब संकट दूर हो गये। तबसे अबतक मैं और मेरी माताजी दोनों नवरात्र-व्रत करते रहे हैं। मैंने बहुत-से दुखी मनुष्योंको नवरात्र-व्रतका नुसखा बताया है और खुशी इस बातकी है कि इस व्रतके करनेसे सबके ही संकट दूर हो गये और वे सब नियमपूर्वक प्रत्येक नवरात्र-व्रत रखते हैं। 'कल्याण' के पाठक इसके पढ़नेसे व्रतकी महिमा स्वयं समझकर गीता और नवरात्र-व्रतको अपनायेंगे, इसी उद्देश्यसे उनकी सेवामें कुछ अपने बारेमें लिखनेका साहस किया है।

—एम० एल० शाण्डिल्या



भगवन्नामसे प्रत्येक कष्ट कट गया

आजसे करीव चार साल पहलेकी वात है कि मैं दर-दर
ठोकरें खाता हुआ अकलेश्वर पहुँच गया। वहाँ कुछ दिन अपने ए
रिश्तेदारके यहाँ रहकर मैं पैदल ही भड़ौंचके लिये चल दिया। मे
पास जहर खानेतकके लिये पैसा नहीं था, क्योंकि चार माससे
वेकार था। रिश्तेदारीमें मांगना उचित नहीं जाना। इसलि
(नाम तो ठीक याद नहीं) एक नदीके किनारे-किनारे चलता गया।
करीव तीन मील चलनेपर भड़ौंच शहर, जो नदीके उस पार व
हुआ था, दिखायी दिया। मैं वहुत थक चुका था और मन-ही-म
कातर भावसे प्रार्थना कर रहा था कि 'परमेश्वर ! मुझे उवार
हे राम ! मेरी डोरी तेरे हाथ है। मैं वड़ा ही अधम हूँ। हे राम
हे राम !! नदी इतनी चढ़ी थी कि उसमें विना नावके पार हो
कठिन था। उस नदीके किनारे करीव तीन-चार सौ गजतक को
भी पेड़ या झाड़ी नहीं थी, जहाँ बैठकर मैं अपने पिछले पा
प्रायश्चित्त करनेके लिये दो आँसू वहा लेता। मेरा हृदय क्रन्दन
रहा था। इतनेमें मैं क्या देखता हूँ कि एक ब्राह्मण देवता किन
ओरसे आ रहे हैं। वे मेरे पास आकर रुक गये और मुझसे
लगे कि 'वेटा ! क्या वात है, तुम इतने दुखी क्यों हो ?' उ
अमृतमयी वाणीने मेरे हृदयपर इतना असर किया कि मैं
उनके चरणोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा। उ
अपने पवित्र करकमलोंद्वारा मुझे उठाया। दुःखित हृदयके क
मुझे अपनी कहानी उनको सुनानेका मौका नहीं मिला। विना

कुछ कहे-सुने वे दीनवन्धु मेरे हाथपर दो आने पैसे, एक अमरूद और एक केला रखकर बोले—'हिम्मत न हारना । नावकी उतराई देकर शहर जाकर कोशिश करना । सम्भव है, कृपानिधान, दयालु प्रभु तुम्हारी सहायता करें। किंतु उसका स्मरण कभी नहीं छोड़ना!' इतना कहकर वे वहाँसे चल दिये । मैं उन्हें नमस्कार करनेके लिये पृथ्वी पर साष्टांङ्ग प्रणाम करने लगा; किंतु पांच मिनटका समय भी नहीं व्यतीत हुआ—जब उठा तो वे दीनवन्धु ब्राह्मण सज्जन वहांसे चले गये थे । मेरी आँखोंने उन्हें कई जगह ढूंढ़ा, परंतु वे दिखायी नहीं दिये । मैं बड़ी परेशानीमें पड़ गया, दिलने गवाही दी कि प्रभु आये, परंतु मैंने पहचाना नहीं । अस्तु !

मैं निरन्तर प्रभु का स्मरण करता हुआ नावपर सवार होकर शहरके घाटपर उतरा तो एक व्यक्ति, जो शायद घाटवाला था, बोला-–'बाबूजी! नावकी उतराई चार आना प्रति सज्जन है ।' मैं उसके ये शब्द सुनकर सहम गया । मैंने सोचा—'शायद करुणा-निधान फिर मेरी परीक्षा ले रहे हैं।' मेरे पास सिर्फ दो ही आने थे, मनमें विचार करने लगा कि 'अब क्या करूँ, इससे क्या कहूँ । ...ी जगह, न जान, न पहचान । हे भगवन्! यह क्या हो गया ? ... इस जगह मेरी मिट्टी पलीद होगी ?'

पैसे देनेमें देर करते देखकर नाववाला बोला—'बाबूजी! क्या ...त है ? आप सुस्त क्यों हो गये ?' अचानक मेरे मुँहसे निकल ...ा—'भाई! मेरे पास सिर्फ दो ही आने हैं। इन्हें ले लीजिये, शेष ...आनेका कार्य मुझसे करा लीजिये । बड़ी कृपा होगी ।' वह कुछ खड़ा सोचता रहा, फिर बोला—'आइये, मेरे साथ चलिये ।' ... आगे-आगे चला, मैं पीछे-पीछे । मुझे वह एक सज्जनकी दुकान

पर ले गया और बैठाकर बोला—'आप बैठिये, मैं अभी आता हूँ।' इतना कहकर वह चला गया। करीब आध घंटे बाद लौटा त उसके साथ तीन-चार सज्जन और थे। आते ही पूछा—'आ नौकरी करना चाहते हैं?' मैंने कहा—'जी, मुसीबतमें हूँ। बड़ कृपा होगी।' कुछ अन्य बातोंके उपरान्त उन्होने आपसमें परामः करके कहा—'आपको भोजनके सहित चालीस रुपये मासिक दि जायँगे और कार्य केवल यही है कि प्रातःसे सायंतक इस मकान मरम्मत सम्बन्धी कामको सँभालते रहें—यह देखते रहें कि मजदू ठीक काम कर रहे हैं न।' मैंने इस कार्यको भगवान्‌की कृपाक देन समझा और काम करने लगा। भगवन्नाम-जप करता हुआ चार महीनेतक काम करता रहा। मकानका काम पूरा होनेके बा मैं अपने जन्मस्थानको लौट आया। उस दिनसे मुझे भगवत्कृपा। न तो कोई बीमारी हुई, न अन्य कोई कष्ट हुआ। मुझे ऐसा ल रहा है—

जा पर कृपा राम कै होई। ता पर कृपा करइ सब कोई॥

'जिसपर राम कृपा करते हैं, उसपर सभी कृपा करते हैं।' यह घटना सत्य है, इसलिये मैं संसारके प्रत्येक माता, पिता बहिन, बन्धुसे प्रार्थना करूँगा कि वे भगवान् की प्रार्थना करें तथ भगवन्नाम-को कभी न भूलें। इसकी महिमा बहुत बड़ी है।

—रमेशचन्द्र गोस्वा



सेठ की उदारता और विशाल हृदयता

सेठ श्रीजगन्नाथजीके यहाँ विवाह था । रोकड़ उनके विश्वासी मित्र श्रीलालजीके पास थी । विवाह सुसम्पन्न हो गया । हिसाब जोड़ा जाने लगा । एक हजार रुपये घट रहे थे । श्रीलालजी बहुत चिन्तित थे । कहीं कुछ याद नहीं आ रहा था और रुपये मिल नहीं रहे थे । इतनेमें सेठ जगन्नाथजी आ गये । पूछा—श्रीलाल! किस फिक्रमें हो ?' श्रीलालजीने कहा—'एक हजार रुपये घट रहे हैं । बहुत खोजनेपर भी पता नहीं लग रहा है । न किसीको दिये ही याद आ रहे हैं ।' सेठजीने तुरंत हँसते हुए कहा—'अरे, तुम भूल गये क्या ? विवाहके दिन मैं तुमसे हजार रुपये ाँगकर ले गया था न ?' श्रीलालजीने कहा—'मुझे तो याद नहीं ड़ता ।' सेठजी बोले—'तुम काम-काजकी भीड़में भूल गये । मेरे स्ते लिख दो ?' सेठजीकी बात ही सत्य होगी, मैं भूलता होऊँगा है—यह समझकर श्रीलालजीने रुपये-नाम लिख दिये और हिसाब रा कर दिया ।

दीवाली आयी । नया मुहूर्त तथा लक्ष्मी-पूजन होगा ।सब जगह झाड़-बुहार होने लगी । सेठजीका नियम था—वे रोकड़की ोठरीका कोना-कोना स्वयं देखते । टटोलते हुए उनका हाथ कोने रखी एक थैलीपर पड़ा । गिनकर देखा तो पूरे एक हजार रुपये । वे थैली हाथमें लिये हँसते हुए बाहर निकले । उस समय ीलालजी आये हुए थे । सेठ जगन्नाथजीको हँसते देख कर उन्होंने ोनोद से पूछा—'क्या मिल गया, जो इतने प्रसन्न हो रहे हैं, सेठ

जीने कहा—'तुम्हारे खोये हुए हजार रुपये।' श्रीलालजीने पूछा—'कैसे ? कौन-से रुपये ?' सेठजी बोले—'विवाहके हिसाबमें ज कम हो रहे थे और तुम जिनके लिये परेशान थे।' श्रीलालजी बो —'तो क्या वे रुपये आपने नहीं लिये थे ? नहीं लिये थे तो फि कैसे कहा कि मैं ले गया था ? और अब ये कहाँ मिले ?' से जगन्नाथजीने कहा—'रुपये मैंने नहीं लिये थे; परंतु तुमको बहु चिन्तित देखकर मैंने कह दिया कि 'मैं ले गया था।' मैं जानत था कि तुमने तो लिये ही नहीं हैं, कहीं खर्चमें लगे होंगे या तु कहीं रखकर भूल गये होगे। इससे मैंने वैसा कह दिया। मैं कहता तो तुम्हारी चिन्ता और भी बढ़ जाती। आज मैं भीत देख रहा था तो एक कोनेमें पड़ी थैली मिल गयी। जान पड़त है, तुम रखकर भूल गये थे।' सेठ जगन्नाथजीकी बात सुनक श्रीलालजी गद्‌गद् हो गये तथा सेठके प्रति उनकी श्रद्धा और भ बढ़ गयी। धन्य सेठकी उदारता और विशाल हृदयताको।

—सी० एल० गु



ईमानदारीका आदर्श

जगनरामजी एक साधारण व्यापारी थे, परंतु अपनी
ीमें पक्के थे। बहुत बड़ा कारोबार नहीं था, साधारण
र किराने की दूकान थी। आढ़तमें भी माल आता था।
किरानेका बाजार बहुत चला। आढ़तियोंका माल भी
ादा आने लगा। एक मित्रसे कारोबारमें लगानेको रुपये
ये, जिससे आढ़तके काममें बहुत सहूलियत हो गयी। एक
येके यहाँसे बहुत-सा जीरा बिकनेको आया। उस समय जीरेका
मंदा था, बिक नहीं सका। आढ़तियेने जल्दी बेचनेको
। जगनरामजीने चेष्टा की, पर नहीं बिक सका! आढ़तियेकी
ता देखकर इन्होंने उसको लिख दिया कि तुम्हारा जीरा
भावमें बिक गया। इस भावमें उसे घाटा था। इन्होंने सोचा
ाढ़तियेको रुपयेकी आवश्यकता है—इसीसे वह मंदे भावमें
ा चाहता है। उसको रुपये भेज देंगे। बाजार बहुत ही मंदा
इससे मंदा और क्या होगा। आगे चलकर बाजार तेज हुआ
ठीक है, नहीं तो अपने थोड़ा-बहुत घाटा लग जायगा।

कुछ ही समय बाद नयी फसलके माल आनेका समय आया।
इस बार जीरेकी फसल बहुत खराब रही। बाजार तेज हो
या। भाव एकाएक बहुत अधिक बढ़ गये। जगनरामजीने माल
च दिया। आढ़तियेको जिस भावमें बेचा लिखा था, उससे पाँच
ज़ारका अन्तर पड़ गया। जगनरामजीने सोचा—आढ़तियेका माल
या। बिक गया होता, तब तो दूसरी बात थी, पर माल तो अपनी

गोदाममें ही था। वह बेचारा घाटेमें क्यों रहे ?' उन्होंने आढ़ती को लिख दिया कि जीरा आपका बिका नहीं था। आपको रुपये जल्दी थी, इसीसे आप घाटा खाकर बाजार-भाव बेचनेको लिख थे। मैंने आपको उस दिनके बाजार-भावसे बेचा लिख दिया पर वास्तवमें उस समय कोई खरीदार था ही नहीं। आपका पड़ा रह गया, अब बिका है और उसमें आपको खर्च निकालकर लगभग चार हजारका नफा हुआ है। हिसाब और रु साथ भेज रहा हूँ।'

आढ़तियेके पास पहले और भी माल था। उसे भी उस मजबूरीसे घाटा खाकर बेचा था। उसके घाटकी रकम लोगों देनी थी। वह बहुत चिन्तित था। अचानक, बिना किसी सम्भावनाके चार हजार रुपये आ गये। वह प्रसन्नताके मारे उछ पड़ा। उसका रोम-रोम जगनरामको आशीष देने लगा। कहना नहीं होगा कि इससे जगनरामकी साख बहुत बढ़ गयी और बहुत नये-नये व्यापारी उसीको माल भेजने लगे।

—हरवंस रा



भगवान्‌की कृपा तथा मुसल्मान सज्जनकी उदारता

यह बात सन् १६३६ की है। मेरी दूकान उस समय श्रीनगर (काश्मीर) में थी। दूकान विलायती मालकी सौदागिरीकी थी। हर सालकी तरह माल विलायतसे आया। मेरे छोटे भाइयोंकी दूकानें अन्यत्र भी थीं, जिनके साथ ऐसा व्यवहार था कि हर साल सितम्बर और अक्टूबरके महीनोंमें मैं उनको बीस-पचीस हजार रुपये भेजता था और वे मुझे मार्चमें सारा रुपया वापस कर देते थे। पर १६३६ के मार्चमें उन्होंने कुछ नहीं भेजा। इधर विलायतका माल धड़ाधड़ आना शुरू हो गया। बहुत-सा माल तो इधर-उधरसे उधार लेकर छुड़ा लिया, परंतु छः हजारका माल न छूट सका। जो माल १५ मार्चतक छूट जाना चाहिये था, वह एक महीने बादतक भी न छूट सका। उधर बैंकों तथा कराचीके आढ़तियोंकी चिट्ठियों और तारोंने नाकों-दम कर दिया। मानहानि होने लगी। आखिर नोटिस आ गया कि यदि बीस अप्रैलतक माल न छुड़ा लिया जायगा तो माल नीलाम कर दिया जायगा। इससे बहुत पुरानी दूकानकी इज्जत मिट्टीमें मिल जानेका भय हो गया। बहुत चेष्टा की—किसी तरहसे माल छुड़ाया जाय; परंतु सब ओरसे निराशा हुई।

अन्तमें जब कोई उपाय नहीं रहा, तब मैंने यह निश्चय किया कि ऐसी बेइज्जतीसे तो मरना अच्छा है। अपनी दूकानमें अंग्रेजी दवाइयाँ भी थीं। एक विषकी शीशी निकालकर आत्मघातका

इस सातवें श्लोकको पढ़कर कहा—'प्रभो ! मैं तो आप
सेवक हूँ, आपके शरण हूँ, मुझे रास्ता बताइये—मैं क्या करूँ
ार्थनाके बाद ही मैंने निश्चय कर लिया कि 'अब आत्मघ
हीं करूँगा।' उसी समय मैंने विषकी शीशी वापस रख दी
चिट्ठी फाड़ दी और सब कुछ सर्वथा प्रभुपर छोड़कर निश्चि
होकर बैठ गया। मैं बैठा ही था कि एक मुसलमान सज्जन—जो
मामूली हैसियतके थे, जिनकी एक दूकान हमने अमीराकदलमें ४०)
महीनेपर किराये ले रक्खी थी और पांच महीनेका किराया भी
नहीं दिया था—आये और बोले कि किरायेके २००) रुपयेका
चेक दे दो।' मैंने बिना कुछ कहे चेक काट दिया। फिर बातों-ही-
बातोंमें मैंने उनसे कहा—'ख्वाजा साहिब ! हमें कारोबारके लिये
पांच-सात हजार रुपये चाहिये। आप हमारी कुछ मदद कीजिये।'
उन्होंने उसी समय अपनी जेबसे आठ सौका चेक निकालकर दिया
और कहा कि 'दो-तीन दिनों बाद मैं फिर रुपये लेकर आऊँगा।'
वे समयानुसार फिर आये और एक सात हजारका चेक फिर दिया
तथा कहा कि 'अगर और चाहिये तो और ला दूँगा। ज्यादा हो
तो वापस कर देना।' मैंने रुपये ले लिये और भगवान्‌की कृपासे
पाँच महीनेमें उनके सारे रुपये वापस कर दिये। रुपये देते समय
न तो उन्होंने मुझसे कोई रसीद ली थी और न वापस लेते समय
कोई सूद ही लिया।

इसके आठ-दस दिन बाद वे ही मुसलमान मित्र आठ-दस
हजारका सामान——हीरेकी अँगूठियाँ, शालें लाये और कहा कि
'जितना सामान बिके, उसके मुनाफेमेंसे आधे पैसे तुम्हारे आधे
मेरे।' प्रभु-कृपासे उसमेंसे भी काफी सामान बिक गया। प्रभुकी
कृपा, गीताकी महिमा तथा मुसलमान सज्जनकी उदारताका
कितना सुन्दर प्रमाण है यह।

—गोविन्दराम अरोड़ा



पक्का निश्चय करके मैंने चिट्ठी लिख दी कि मेरी मृत्युके बाद पुलिस किसी घर या दूकानके आदमीको तंग न करे। अब यह विचार आया कि इस कामको अंधेरेमें करूँगा। इससे चिट्ठी और विषकी शीशी अपने जेबमें रख ली। उस समय शामके चार बजे थे। अब सब कुछ बुरा लगता था और निराशा-ही-निराशा दिखायी देती थी।

मेरे दफ्तरका कमरा अलग था और उसमें श्रीगीताजी और 'कल्याण' हर समय पड़े रहते थे, पर अब मन किसी चीजको देखना या पढ़ना नहीं चाहता था। फिर भी यों ही बेमनसे गीताजीपर मेरा हाथ जा पड़ा और श्रीभगवान्‌जीकी प्रेरणासे नवम अध्यायके दर्शन हुए। उसके—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

इन श्लोकोंको मैंने बार-बार पढ़ा। मेरा मन पलटा। भगवान्‌की कृपाकी ओर ध्यान गया। मैंने फिर विचार किया तथा भगवान्‌के आगे कातर-कण्ठसे प्रार्थना की और गीताके दूसरे अध्यायके—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

मानवताकी ज्योति

समाजमें गुंडेके रूपमें प्रसिद्ध व्यक्तिके प्रति लोगोंकी घृणा-दृष्टि होना स्वाभाविक है। परंतु यह गुंडा भी एक मनुष्य है और इसके हृदयके किसी कोनेमें भी कभी-कभी मनुष्यताकी ज्योति जलती होगी, इस बातको लोग भूल जाते हैं। ऐसे ही गुंडा—तत्त्वके हृदयमें छिपी हुई मनुष्यताकी ज्योतिकी यह कहानी है——

गाँवका एक किसान अपनी बीमार पत्नीको लेकर उसकी चिकित्साके लिये राजकोटके अस्पतालमें आया। इधर-उधरसे इकट्ठे करके वह कुछ रुपये साथ लाया था। पत्नीको अस्पतालमें भरती करके वह कुछ सामान खरीदनेके लिये बाजारकी ओर चला। एक जेबकतरकी दृष्टि उसपर पड़ी। किसानकी जेबमें नोट हैं, इस बातको किसी तरह जानकर वह उसके पीछे हो लिया तथा उसकी जेब काटकर नोट ले गया। किसानको जब अपनी जेब कटनेका पता लगा, तब वह काँप उठा, उसकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया और वह भयभीत होकर रो पड़ा। लोगोंने कहा—'यह शहर है। सावधानी रखकर चलना-फिरना चाहिये। यों बदहवाश होकर चलोगे तो जेब कटेगी ही।'

इतनेमें ही उधरसे शहरका एक नामी गुंडा निकला। उसने एक अनजान किसानको इस प्रकार रोते देखकर कारण पूछा। उसको जब यह पता लगा कि बीमार पत्नीका इलाज करानेके लिये आये हुए किसानकी जेब कट गयी है, तब उसके हृदयके कोनेमें छिपी हुई मनुष्यताकी ज्योति जगमगा उठी। उसको ऐसे गरीब-

। जेब काटनेवालेपर रोष आ गया । उसने किसानको आश्वासन या—'तू शान्त हो, चिन्ता न कर । तेरे रुपये, चाहे जैसे हों, ला दूंगा । रातको आठ बजे तू यहीं आ जाना ।' किसानके दयमें कुछ ढाढ़स आया । उसने कहा—'बापजी ! मेरे पैसे वापस । दोगे तो तुम्हारी तुलना भगवान्से भी नहीं होगी । भगवान् म्हारा भला करेंगे ।'

इसके बाद, समाज जिसको गुंडा मानता है, उसने अपने ादमियोंकी मारफत पता लगवाया और किसानकी जेब काटने- ालेको पकड़ लिया । किसानके रुपये उससे ले लिये तथा उसको मकाकर निकाल दिया ।

रातको आठ बजे किसान वहां पहुँचा, उसके पहुँचनेके पहले वह खड़ा किसानकी राह देख रहा था । किसानको चाय-पानी लाकर उसके रुपये उसे देकर कहा—'गिन लो, पूरे हैं न ?' सानके आनन्दका पार नहीं था । फिर उस गुंडेके नामसे प्रसिद्ध ानव' ने पाँच रुपये अपनी ओरसे देते हुए किसानसे कहा—'यह ी, दवादारू अच्छी तरह कराना, शहरमें कोई बदमाश तुझे हैरान रे तो मुझे यहीं खबर देना ।'

किसान उसकी मानवताको देखकर गदगद हो गया । उसकी ांखोंसे हर्षके आंसू बहने लगे । अनजान शहरमें इस प्रकार सहायता रनेवाले, शहरके समाजमें गुंडेके नामसे प्रसिद्ध इस पुरुषके प्रति िकसानका हृदय वन्दन कर रहा था ।



मोमिनकी ईमानदारी

कुछ समय पहलेकी बात है। सेठ श्रीलालजीके घरमें वि- था। उन्होंने एक दिन पाँच सौ रुपयेकी एक थैली सदा बन्धु घरमें आनेवाले मोमिन (मुसलमान) को दी और कहा कि ' मे दे आओ।' वह घर देनेको गया, पर वहाँ बड़ी भीड़-भाड़ थ जिनको थैली देने गया था, उन्होंने ली नहीं। इधर श्री लालाज भी फुरसत नहीं थी। मोमिनने वह थैली ले जाकर अपने घर दी। विवाह हो गया। रोकड़में पूरे पाँच सौ रुपये घट रहे श्रीलालजी चिन्तित थे और स्मरण कर रहे थे, पाँच सौ किसको दिये। इतनेमें मोमिन आ गया। उसने कहा—' श्रीलाल! क्या सोच रहे हो?' श्रीलालने पाँच सौ रुपयेकी कही।' मोमिनने कहा—'वे पाँच सौ तो मेरे घर पड़े हैं। थैली दी थी, मैं घर गया; वहाँ किसीने ली नहीं, तब मैं अपने रख आया। अभी ला देता हूँ।' सेठ श्रीलालजीकी चिन्ता गयी। मोमिनकी ईमानदारीका प्रकाश और भी प्रखर हो गय

—चिरंजी



भगवान्‌का भेजा बेटा

एक दिनकी बात है—रातको दूकान बढ़ाकर मैं घर आया। बाभी-वहीखाते यथास्थान रखकर सदाकी तरह हाथ-मुँह धोकर मैं गमछेसे मुँह पोंछ रहा था। इतनेमें मेरी पत्नीने आकर कहा—'अपनी पड़ोसिन कमला भाभीको आज भगवान्‌ने पुत्र दिया है।' ये शब्द सुनकर मैं चकित हो गया। मेरे आश्चर्यकी सीमा नहीं रही और मेरा आश्चर्य दूर हो, इसके पहले ही सचमुच कमला भाभी एक छोटे-से बच्चेको लेकर मेरे सामनेसे निकल गयीं।

मुझे पता था—कमला भाभीका विवाह हुए लगभग दस वर्ष हुए होंगे। परंतु ईश्वरने उनकी कोखको खाली रक्खा था, उनकी मातृत्वकी पिपासा दिन-पर-दिन तीव्र होती जा रही थी। इस कारण इस अनपेक्षित घटनाको सुननेके लिये मैं खूब ही उत्सुक बन गया। कमला भाभीके अतृप्त मातृत्वको, उनके स्नेह भरे हृदयको मानो उल्लसित करती हो, वैसे ही यह सच्ची घटना मेरी पत्नीने मुझे यों सुनायी——

'आज दुपहरकी बात है। कड़ी धूप थी। सब लोग भोजन करके आराम कर रहे थे। इतनेमें एक अधेड़ उम्रका अनजान आदमी आकर आँगनमें खड़ा हो गया। उसके हाथमें कपड़ेसे लपेटा हुआ एक नन्हासा बच्चा था। देखनेसे वह आदमी मध्यमवर्गका-सा प्रतीत होता था। साधारण मैले कपड़े तथा कहीं-कहीं लगी हुई पेवंद उसकी स्थितिको स्पष्ट कर रही थी। गरमी और थकावटसे

पीड़ित उसके मुखपर निराशा और ग्लानिकी रेखाएँ स्पष्ट उभ आयी थीं। वह प्यासा था। जल पीकर उसने राहतकी लँबी सां ली, वह छायामें बैठ गया। बच्चा भी भूख-प्याससे तड़प रहा थ और धीरे-धीरे रो रहा था और वह आदमी उसे छिपाने तथा चु रखनेका व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था। किसी बच्चेके रोनेकी आवा सुनकर अपने बगलवाली माताजी, कमला भाभी आदि दौड़क आये और उस बच्चेके बाबत आतुरतासे पूछ-ताछ करने लगे। उ आदमीने कहा—

'मैं बदनेराका रहनेवाला हूँ। इस कमनसीब बच्चेकी मां इस जन्म देकर प्रसूतिमें ही जाती रही। मेरे कुटुम्बमें मैं अकेला ही अतएव स्वाभाविक ही इस बच्चेकी सारी जिम्मेवारी मुझपर पड़ी। मैं इस बिना मांके बच्चेकी मां नहीं बन सकता। पर क करूँ? यदि कोई गृहस्थ इस बच्चेको अपनानेके लिये तैयार ।य तो मेरी और इस बच्चेकी हजारों मूक आशीषें उसपर ब पड़ेंगी।'

इस करुण घटनाको सुनते ही पास ही बैठी हुई कमला भाभ का मातृत्व जाग्रत् हो उठा। उनकी स्नेहभरी दृष्टि बच्चेके कोम और सुन्दर बदनपर लग गयी। कुछ देर विचार करनेके बाद, मा उन्होंने निश्चय कर लिया और वे बोलीं—'मैं इस बच्चेकी म बनकर इसकी सार-सँभाल करूँगी और मेरे हृदयका अमृत सींचक इसको पालूँगी।'

कमला भाभीके इस आकस्मिक निर्णयसे सभी आश्चर्यमें डू गये। उनकी सास-माताजी भी खूब नाराज हुई और उलाहना दे लगीं। कुछ ही देरमें कमला भाभीके स्वामी लक्ष्मण भाई भी वह

ा पहुँचे । वे भी सारी बातें सुनकर आश्चर्यमें डूब गये । कुछ ही
णों बाद सबको आश्चर्यमें डालते हुए लक्ष्मण भाई आगे बढ़े और
उन्होंने बच्चेको उस अनजान आदमीके हाथोंसे लेकर स्वस्थताके
ाथ कमला भाभीको सौंप दिया और बच्चा भी मानो उसकी माँ
ी मिल गयी हो, उनके हृदयसे चिपट गया ।

आश्चर्यसे अवाक् हुए सबके मौनका भंग करते हुए लक्ष्मण
ाई बोले—'इस समय मनुष्यके रूपमें ईश्वर तुम्हारी परीक्षा लेने
ाया है । इस अनाथ बालकका इसी घरमें आना, इसमें अवश्य
ी कोई ईश्वरीय संकेत होगा । इससे बढ़कर पुण्य दूसरा और क्या
ी सकता है ? दुनिया या समाज चाहे जो कहे, परंतु एक अनाथ
ालकके जीवनमें प्राण भर देनेका तुम्हारा यह प्रयास कितना
ुण्यमय है !' लक्ष्मण भाईकी लंबी और प्रभावोत्पादक विवेकवाणी
ुनकर माताजीने भी कुछ सकुचाते हुए मनसे, बालकको अपनाने-
ी अनुमति दे दी । फिर उस अनजान मनुष्यसे, जिसमें कानूनकी
ृष्टिसे कोई अड़चन न आये, ऐसी लिखा-पढ़ी करवा ली और इस
्रकार आजके शुभ दिन कमला भाभी भगवान्‌के द्वारा भेजे हुए
ेटेकी माँ बन गयीं ।

इस घटनाको सुनकर मैं गहरी विचार-मालामें गुँथ गया ।
कमला भाभी और लक्ष्मण भाईके साहस और उनमें वर्तमान सच्ची
मानवताका मैं मन-ही-मन पूजा-भावसे वन्दन करने लगा ।

—गुणवंतराय परमानन्द मालविया



आदर्श आतिथ्य

हमलोग तुलसी-स्याम गये थे। उस समयका एक प्रसंग लि रहा हूँ——

तुलसी-स्याम जानेके लिये ऊना और राजुलासे बसद्वारा त डेडाँणसे बैलगाड़ीके द्वारा जाना पड़ता है। बसका रास्ता सुभीते था; पर एक तो चाँदनी रात थी; दूसरी गाड़ीमें विशेष सुख मिलने का ध्यान था, इससे हमलोगोंने डेडाँणसे गाड़ीमें ही जाने निश्चय किया।

डेडाँणसे हमलोग रातको साढ़े आठ-नौ बजेके लगभग निकले चार-पाँच घंटे तो हँसी-मजाक तथा बातचीमें बीत गये। इस बाद जी ऊबने लगा। हम गाड़ीवालेसे बार-बार पूछने लगे—'अ कितनी दूर है?' गाड़ीवान जवाब देता—बस, तीन-चार खेत औ है; परंतु गाड़ीवानके खेत पूरे होते ही नहीं। जब पूछा जाता, त यही उत्तर!

कुछ देर बाद फिर पूछा तो गाड़ीवानने कहा—'जान पड़त है, अपने रास्ता भूल गये हैं, खूब! रहे-सहे उमंग-उछाहपर भी पानी फिर गया।

थोड़ी देरके बाद गाड़ीवालेने कहा—'सामने कुछ दिखायी दे रहा है।' समीप पहुँचनेपर एक बुलंद आवाज आयी—'अरे कौन है?'

हमने कहा—'बाबा! हम रास्ता भूल गये हैं, हमें तुलसीस्याम जाना है।'

पहली आवाजमें भरी कठोरता दूर हो गयी और निरी मृदुता भरकर उमगसे उसने कहा—'ओहो ! आओ, आओ, भाई ! मुझ गरीबकी झोपड़ीको पवित्र करो; तुम-जैसोंकी चरणधूलि मुझे कहाँ मिलनी है।' हमारी गाड़ीके पास एक रैबारी आ पहुँचा।

हमने कहा—'हमें रुकना नहीं है, तुम हमको रास्ता बता दो।'

बाबाने कहा—'अरे ! ऐसा भी हो सकता है ? यहाँतक आये और अब मेरे आँगनपर चरण रक्खे बिना ही चले जाओगे ? ऐसा भी कहीं चल सकता है ?'

हमलोगोंको उसके आग्रहके वश होना पड़ा।

बाबाने घरके लोगोंको जगाया और पुत्रवधूसे कहा—'मेहमान आये हैं; आटा सानो, भोजन तैयार करो।' (इस समय रातके ढाई बजे थे।)

हमने कहा—'बाबा ! हमलोग ब्राह्मण हैं, फिर हमें भूख भी नहीं है' हमलोगोंकी जाति सुनकर उसने भोजन करानेका आग्रह तो छोड़ दिया, पर उसके बदले भैंसका पक्का सेर दूध लाकर रख दिया और कहा, 'इस बार तो तुम्हें बिना जीमे जाने देता हूँ; परंतु लौटते समय तुम्हें इधरसे जीमकर ही जाना पड़ेगा। तुम्हारे आनेके पहले ही में बगलके गाँवसे महाराजको बुलाकर रसोई तैयार रखूंगा।'

हमें उसके घरका वातावरण कुछ शोकभरा लगा। घरके मनुष्य ऐसे चलते थे, मानो उनके शरीरोंसे चेतन निकल गया है। वृद्धके मुखपर उदासी तैर रही थी। हमलोग पूछ बैठे। वृद्धने कहा—'मेरा जवान बेटा दो महीने पहले……।' वृद्धसे बोला नहीं गया, उसका गला भर आया।

हमने कहा—'दिलमें पुत्र-मृत्युके शोककी छाया घिरी है, फि
भी तुम आँगनपर आये अतिथियोंका इतना भाव-भरा स्वागत क
सकते हो ?'

वृद्धने जो उत्तर दिया, वह हमारी प्राचीन 'अतिथिदेवो भव'को
भावनाके मस्तकपर मानों सोनेकी कलँगी लगाने-जैसा है—'संसारमें
सुख-दुःखकी घटमाला, जन्म-मृत्युका चक्कर चलता ही रहता है।
आँगनपर आये मेहमानका आगत-स्वागत न करें तो फिर हमारी
आबरू ही क्या है। फिर मैं और ये मेहमान ही कितने दिनके ?'

वृद्ध रातके साढ़े तीन बजे एक गाँवतक चलकर हमें रास्ता
बताकर लौटा और लौटते समय हमलोगोंको उधर होकर जानेका
अत्यन्त आग्रह करता गया।

—मधुकान्त भ



वे कौन थे ?

कुछ महीनों पहलेकी घटना है। मेरे पिताजीकी उम्र लगभग ५५ वर्ष की है। वे दोहाद (गुजरात) में थे। एक दिन अकस्मात् हृद्रोग तथा उष्णताकी शिकायत बढ़नेसे वे भयानक बीमारीके चंगुल-में फँस गये। मल-मूत्रके द्वार रुक गये। पेट फूल गया। नलिकाके द्वारा बड़ी कठिनतासे पेशाब करवाया जाता था। लगभग बीस दिन लगातार इसी अवस्थामें बीत गये। अन्न-पानी सब बंद था। बोलना-चलना बंद। बिल्कुल अवसन्न चारपाईपर लेटे रहते थे। बड़े-बड़े डाक्टर-हकीमोंका इलाज हुआ। करीब बारह-तेरह सौ रुपये खर्च हो गये पर कोई अन्तर नहीं पड़ा। डाक्टर हकीमोंने आखिरी राय दे दी कि रोगी किसी हालतमें बच नहीं सकता और उन्होंने अपने हाथ टेक दिये। घरमें सबकी राय हुई, अब व्यर्थमें दवा क्यों करायी जाय। दवा बंद करदी गयी। हमारी आँखें गङ्गा-यमुना-धार बनी हुई थीं। कोई उपाय हाथमें नहीं रहा। तब केवल दीनदयाल ईश्वरपर भरोसा करके हम पाँचों भाई श्रीमद्भग-वद्गीताका पाठ करने लगे। प्रत्येक अध्यायके अन्तमें कातर भावसे रामधुन करते। यों हमें ३०-३२ घंटे बीत गये।

इसी बीच अकस्मात् किसी एक महात्माने आकर हमारे दुःखका कारण पूछा। हमने सारी दुःख-दर्दकी कथा महात्माको सुना दी। महात्माने एक पुड़िया फाँकनेकी दवा दी और कहा कि 'इससे तुम्हारे पिता अच्छे हो जायँगे।' हमें महात्माकी बातपर विश्वास नहीं था। जहाँ बड़े-बड़े डाक्टर कुछ नहीं कर सके, वहाँ

इस पुड़ियासे क्या होना है । हमें विश्वास तो पूरा नहीं हुआ । पर और कोइ उपाय था नहीं, हमने पुड़िया दे दी । अश्चर्यचकित हो गये सब-के-सब जबकि पुड़िया देनेके करीब एक घंटे बाद ही पिताजीकी आँखें खुल गयीं । मुँह भी खुला । मल-मूत्रके द्वार भी खुल गये और पेट भी हल्का हो गया ।

सब घरके लोग, रिश्तेदार सभी दंग रह गये । देह-त्यागके लिये तैयार पिताजी डेढ़ घंटेमें ही पूर्ण स्वस्थ होकर खड़े हो गये। शरीरमें कमजोरी अवश्य थी, पर उन्होंने नया जीवन पाया ।

यह कितना बड़ा आश्चर्य था। महात्माकी खोज की गयी, परंतु वे आजतक नहीं मिले । वे कौन थे, महात्मा ? भगवान् ? गीता माता ? या रामनाम ?

—वंशीलाल एम० अग्रवाल बी० ए०



विश्वासका फल

घटना मार्च १९१५ की है। मैं प्रयागमें इन्ट्रेंस दर्जामें पढ़ता ा। गवर्नमेंट हाई स्कूलमें हम परीक्षा देने गये। उस समय इन्ट्रेंस रीक्षामें १२ पर्चे होते थे। प्रायः परीक्षा सोमवारको प्रारम्भ ोकर शनिवारको समाप्त हो जाती थी। प्रत्येक दिन दो पर्चे होते । पहला पर्चा १० बजेसे १ बजेतक और एक घंटाके विश्रामके ाद २ बजेसे ५ बजेतक दूसरा पर्चा होता था। इस तरह ६ दिन-बारह पर्चे हो जाते थे। आजकलकी तरह परीक्षाका समय तानकी लंबी आँतकी तरह महीनों नहीं चलता था। आजकल रीब विद्यार्थियोंके लिये बड़ी कठिनाई है कि वे मुश्किलसे जाकर हरोंमें जहाँ परीक्षा होती है, काफी दिनोंतक वहाँ अपना डेरा माये पड़े रहें। इस महँगाईके जमानेमें काफी दिन अपने घरसे ाहर पड़े रहना, बड़ी परेशानी और दिक्कतका काम है।

परीक्षाका दूसरा दिन था। पहला पर्चा हो चुका था। विद्यार्थी त्कण्ठावश दूसरे विद्यार्थियोंसे अपने उत्तरोंका मिलान करते थे। ससे उन्हें बड़ी मनस्तुष्टि और संतोष होता था। मेरी सीटके ीछे एक मुसलमान विद्यार्थी बैठा था—वह अपने उत्तरोंके साथ रे उत्तरोंको मिलान कर रहा था, वह मेरे बिल्कुल संनिकट था। सने एक जमुहाई ली। उसके मुँहसे बड़ी दुर्गन्धि निकली और रिणामस्वरूप मुझे कै (वमन) हो गयी। मेरे सिरमें चक्कर आने ागा। दर्द भी पैदा हो गया। परीक्षा-हालकी निगरानी करने ालोंने तुरंत भंगीको बुलाया और उसे साफ कराया। मैंने खूब

अच्छी तरहसे हाथ-मुँह धोया—गुलाबका फूल भी सूँघा, परंतु मे
तबियत ठीक न हुई। उसी हालतमें मैंने दूसरा पर्चा भी किय
वह पर्चा शायद संस्कृतका था। मेरा वह पर्चा बिगड़ गया।
उसे पूरा कर सीधे अपने घर चला आया। मेरा मन बार-
यही कहता था कि तुम्हारी सफलता संदेहात्मक है। मेरे मक
में तीन और विद्यार्थी रहते थे। उन्होंने उन पर्चोंके उत्तरोंके बा
पूछ-ताछ शुरू की——मैंने इधर-उधरकी बातें कर उनसे अ
पिण्ड छुड़ाया, मेरा पेटा यद्यपि डोल गया था; परंतु मैंने अ
मुखमुद्रा सदैव प्रसन्न रक्खी——ताकि वे मेरी कमजोरी भाँ
सकें।

परीक्षा समाप्त हो गयी। हमारे मकानके तीनों सहपाठी
जानेको तैयार हुए—उनमेंसे दो हमारी बस्तीके ही थे। ऐन मौवे
मैंने उनसे घर न चलनेके लिये कहा। कारण पूछनेपर मैंने उ
'चित्रकूट'-दर्शन करनेको कहा। वे लोग चले आये। मैं दूसरे
अपना सामान प्रयागके एक परिचित व्यक्तिके यहाँ रखकर घ
दरी, लोटा और चद्दर लेकर चित्रकूट-दर्शन करनेके लिये
दिया। मेरे पास खर्च बहुत मामूली था। मैं इलाहाबादसे मानि
पुर आया। मानिकपुर स्टेशनपर ज्यों ही मैं गाड़ीसे उतरा,
ही हमारे जिले (फतेहपुर) के असनी गाँवके पं० शिवानन्द त्रि
वकीलके लड़के प्लेटफार्मपर मिल गये—वे यहाँ असिस्टेंट स्टे
मास्टर थे। वकील साहब फतेहपुरमें वकालत करते थे और स
संतोंकी खूब सेवा और सत्सङ्ग करते थे। वे मुझे बहुत प्यार क
थे। अपने पुत्रकी तरह मेरे प्रति उनकी वात्सल्य-भावना थी। त्रिवे
जीने बड़े जोरसे चिल्लाकर कहा कि 'अरे भाई! तुम यहाँ कैसे? मैंने

उनसे उसी लहजेमें पूछा—'भाई, तुम यहाँ कैसे?' उन्होंने कहा—'मैं यहाँ आसिस्टेंट स्टेशन-मास्टर हूँ।' मैंने कहा कि 'मैं चित्रकूट-दर्शन करने जा रहा हूँ।' वे मुझे अपने क्वार्टर ले गये। उन्होंने मुझे बड़े आदर और सत्कारसे रक्खा। मानिकपुरसे बाँदा जानेवाली गाड़ीके रास्तेमें करवी और चित्रकूट पड़ता है। मैंने मानिकपुरसे करवी पैदल जाना निश्चय किया; परंतु इस बातको त्रिवेदीजीसे नहीं कहा। उनसे विदा होकर मैं चित्रकूटके लिये चल दिया। रास्ता सीधा था। पक्की सड़क मानिकपुरसे करवो होती हुई चित्रकूट जाती है। मैं शामके करीब करवी आया, बाजारमें हमारी विन्दकीके बाबू राधावल्लभजी अग्रवाल मिल गये। वे यहाँ करवीमें मिर्जापुरके श्रीभारामल फतेहचन्द्र फर्ममें मुनीम थे। हमारे पिता और हमारे पिताके मामासे उनका घनिष्ठ स्नेह था। वे मुझे अपनी दूकान ले गये। भोजन करके मैं सो गया।

सवेरा हुआ—शौचसे निवृत होकर मैंने उनसे चित्रकूट जानेकी आज्ञा माँगी, उन्होंने मेरे साथ दूकानका एक पल्लेदार कर दिया कि वह मुझे रास्ता बता आये। मैंने उससे रास्ता पूछकर उसे विदा किया। चित्रकूट करवीसे तीन-चार मीलसे ज्यादा नहीं है। वहाँ पहुँचकर छविकिशोरके मन्दिरमें मैंने डेरा डाला। हमारे पासके घोरहा ग्रामनिवासी पं० बंशीधर, मुरलीधर दो भाई थे। वे अच्छे ज्योतिषी थे। वे प्रायः हर साल चित्रकूट जाते थे। वे नयागाँव जागीरदारके यहाँ जाया करते थे। यह नयागाँव पैसुरनी नदीके किनारे बसा है, जो चित्रकूटमें ही है। इन्हींका छविकिशोरजीका मन्दिर है। उपर्युक्त पण्डितजीने हमसे छविकिशोरजीके बाबत कहा था। चित्रकूटमें पहले-पहल गया था। मेरा वहाँ कोई परिचित

व्यक्ति नहीं था। भगवान्‌की गोदमें अपनेको सौंपकर मैं निष्कण्टक-भावसे यहीं ठहर गया। मैं दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शौच-कुल्ला करके कामयानाथजी के दर्शनको निकला। मेरी मातामही बड़ी दयालु और भक्त स्वभावकी थीं। उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ में बीतता था। मैं लड़कपनसे अपनी माँके पास न रहकर इन्हींके पास रहता था। अपने पिताको भैया कहता था और उन्हें भैया अम्मा कहता था। मैं उन्हींके साथ लेटता था। उन्हें तुलसी, सूर तथा मीराके भजन और पद खूब याद थे। वे मुझे खूब सुनाया करती थीं। मीराके पद वे बड़े भक्तिभावसे गाया करती थीं। उन्होंने मुझसे कई बार कहा था कि 'जो कोई चित्रकूटके कामदगिरिकी परिक्रमा और कामतानाथके दर्शन कर आता है, उसके सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं; सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं।' जिस दिन मेरा पर्चा खराब हुआ था, उसी दिन मैंने परीक्षाफल निकलनेके पहले कामदगिरिकी परिक्रमा करने और कामतानाथजीके दर्शन करनेका संकल्प कर लिया था। ...की पूर्ति करके मैंने साधु-महन्तोंके दर्शन किये। यद्यपि वैरागी साधुओंमें मैंने न तो उच्चस्तरकी साधना देखी और न प्रकाण्ड पाण्डित्य। उनमें धर्मका वहिरङ्ग रूप ही देखा। यह भी सम्भव है कि मुझे अच्छे महात्माओंके दर्शन न हुए हों। दोपहरको मैं दर्शन करके और परिक्रमा करके छविकिशोरके मन्दिरमें गया। वहाँ एक वैश्य महोदय श्रीमद्भागवतकी कथा सुन रहे थे। मैं भी सुनने लगा। जब कथाका विश्राम हुआ तो कथा बाँचनेवाले पण्डितजी मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे भोजन करनेके लिये बड़ा आग्रह किया। मैंने उनके अनुरोधको अस्वीकार किया, तब सेठजी आये। उन्होंने मुझे कुछ-न-कुछ खानेका अनुरोध किया।

थोड़ी मिठाई खायी और वहीं छविकिशोरके मन्दिरमें सो गया। सुबह उठकर पण्डितजीको प्रणाम कर करवीके लिये प्रस्थान किया। चलते समय मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न था——

मन प्रसन्न तनु तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥

——की याद हो आयी। शामको करवी आया। दूसरे दिन मेरे यहांके सेठजीने मुझसे कहा कि 'लगे हाथ राजापुर भी हो आओ और उधरसे भरवारी स्टेशनपर चढ़कर अपने घर चले जाना।' यह मुझे पसंद आ गयी। उन्होंने राजापुरकी बैलगाड़ीमें मुझे बैठा दिया। ये गाड़ियाँ राजापुरसे अनाज बेचनेके लिये करवी आती थीं। मैं राजापुर आकर पं० गंगाप्रसादजीके यहाँ ठहर गया। उपर्युक्त पण्डितजी बिन्दकीके पास गंगरावल गांवके निवासी थे और बिन्दकीमें प्राइमरी स्कूलमें उन्होंने मुझे पढ़ाया था। पण्डितजी हमारे मकानके सामने वैद्य बाबाके कमरेमें रहते थे। वे बड़े साधु स्वभावके पुरुष थे। उनके यहाँ ठहरा। संकटमोचन और तुलसीदासजीके मन्दिरके दर्शन किये। उनका हस्तलिखित अयोध्याकाण्ड भी देखा। दूसरे दिन शौचसे निवृत्त होकर जलपानकर भरवारीके लिये चल दिया। टेंटमें पैसे थोड़े थे। शायद भरवारीसे बिन्दकी रोडतक रेल-किराया और स्टेशन बिन्दकी रोडसे बिन्दकीतकका इक्काकिराया। निदान राजापुरसे भरवारीतक मैंने पैदल यात्रा की। भरवारीमें रेलमें बैठा और इस तरह बिन्दकी रोड स्टेशनमें उतरकर इक्कासे अपने घर आया।

ज्यों-ज्यों परीक्षाफल निकलनेके दिन नजदीक आने लगे, मैं कुछ सशंकित होने लगा। मेरे दोनों मित्र, जिन्होंने मेरे साथ परीक्षा दी थी, मेरे पास आते और 'गजट' आनेकी बाबत पूछते

थे। बिन्दकीमें सरकारी पत्र, जिसमें इन्ट्रेंसका परीक्षाफल छपता था, हिंदी मिडिल-स्कूलमें आता है। एक दिन वे दोनों मित्र मेरे पास आये और गजट देखनेका आग्रह करने लगे। मैंने उनसे गजट देख आने और परिणामसे अवगत करानेकी प्रार्थना की। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। थोड़ी देरके बाद दोनों साथी परीक्षा-फल मालूम कर वापस आये। उनमेंसे एकका मुख म्लान था, दूसरे का प्रसन्न। मैं समझ गया कि म्लान मुखवाले सहपाठी 'फ़ेल' हैं और प्रसन्न मुखवाले साथी 'पास' हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम पास हो गये हो।' मैंने अपनी प्रसन्नताके भाव रोककर फेल होने-वाले साथीको सान्त्वना दी और इस तरह मेरी परीक्षाकी बात समाप्त हुई। मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि कोई महान् शक्ति योगक्षेमकी व्यवस्था मेरे लिये किये हुए है। घर आकर मैंने अपनी दादीसे चित्रकूट-दर्शन और कामदगिरिकी परिक्रमा करनेकी बात सुनायी थी, तब उन्होंने तत्क्षण ही यह कह दिया था, कि, 'बच्चा! तू पास है!' आज परीक्षाफल देखकर निश्चितरूपसे मैंने उनसे कहा—'अजिया, तुम्हारे आशीर्वादसे मैं पास हो गया।' उन्होंने कहा—'नहीं बेटा! कामतानाथने तुझे पास किया।' मैंने उनकी प्रेम-पूरित वाणीको सुना और भगवान्‌की जय-जय कर मैं अपने काममें लग गया।

—पं० चन्द्रिकाप्रसाद वाजपेयी



सेवा-मूर्ति

लगभग आठ मासकी बात है। फ्लूका प्रकोप सम्पूर्ण देशमें
प्त हो चुका था। उसी समय मैं रामायणपर प्रवचन करनेके हेतु
रोजाबाद गया। वहाँ जाते ही इनफ्ल्युएंजाने मुझे भी अपने
ुलमें धर दबाया। मैं अशक्त हो गया। सर्वत्र निराशा दीखने
ी। वहाँ किसीसे मैं परिचित भी नहीं था। अकेला ही था।
ोसे विशेष घबरा गया। पासमें विशेष पैसे भी नहीं थे, जिससे
घर ही किसी प्रकार जा सकूँ। बहुत बड़े चक्करमें पड़ गया।
ी समय वर्षा भी होने लगी। ऐसी विपत्तिमें कोई बात पूछने-
ला भी नहीं दिखायी पड़ रहा था। तीन बज रहे थे। बुखार
रोंसे चढ़ा था। जिस मन्दिरमें रुका था, वह भी वर्षाके आघात
सहन करनेमें असमर्थ था। ऐसी स्थितिमें मैं रामायणकी चौपाई
धीरे-धीरे पढ़ने लगा।

उसी समय एक बुढ़िया माई मेरे पास आयी और बिना कुछ
-सुने ही मेरा लाउड स्पीकर, हारमोनियम और सारा सामान
ा लिया और बोली 'बाबा चलो।' मैं भी बिना किसी हिच
चाहटके लड़खड़ाते हुए चल पड़ा। वहाँ जाकर मैं लेट गया।
े नींद आ गयी। पाँच बजे उठा तो देखा कि बुढ़िया भीगी
मेरी चारपाईके पास बैठी रो रही है। मैंने पानी माँगा।
ढ़ियाने पानी देते हुए कहा—'बेटा! तू जल्दीसे अच्छा हो जा।'
वा कहकर उसने 'एस्प्रो' की दो टिकिया मुझे पानीके साथ
ला दी। मुझे। मुझे कुछ आराम मालूम पड़ा। रात्रिमें बिना

थे। विन्दकीमें सरकारी पत्न, जिसमें इन्ट्रेंसका परीक्षाफल छप
था, हिंदी मिडिल-स्कूलमें आता है। एक दिन वे दोनों मित्र
पास आये और गजट देखनेका आग्रह करने लगे। मैंने उनसे ग
देख आने और परिणामसे अवगत करानेकी प्रार्थना की। उन्हं
मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। थोड़ी देरके बाद दोनों साथी परीक्ष
फल मालूम कर वापस आये। उनमेंसे एकका मुख म्लान था, दूस
का प्रसन्न। मैं समझ गया कि म्लान मुखवाले सहपाठी 'फ़ेल'
और प्रसन्न मुखवाले साथी 'पास' हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि '
पास हो गये हो।' मैंने अपनी प्रसन्नताके भाव रोककर फेल हो
वाले साथीको सान्त्वना दी और इस तरह मेरी परीक्षाकी व
समाप्त हुई। मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि कोई महान् श
योगक्षेमकी व्यवस्था मेरे लिये किये हुए है। घर आकर मैंने अप
दादीसे चित्रकूट-दर्शन और कामदगिरिकी परिक्रमा करनेकी ब
सुनायी थी, तब उन्होंने तत्क्षण ही यह कह दिया था, कि, 'बच्चा
तू पास है!' आज परीक्षाफल देखकर निश्चितरूपसे मैंने उ
कहा—'अजिया, तुम्हारे आशीर्वादसे मैं पास हो गया।' उन
कहा—'नहीं बेटा! कामतानाथने तुझे पास किया।' मैंने उन
प्रेम-पूरित वाणीको सुना और भगवान्की जय-जय कर मैं अ
काममें लग गया।

—पं० चन्द्रिकाप्रसाद वाज



सेवा-मूर्ति

लगभग आठ मासकी बात है। फ्लूका प्रकोप सम्पूर्ण देशमें ाप्त हो चुका था। उसी समय मैं रामायणपर प्रवचन करनेके हेतु रोजाबाद गया। वहाँ जाते ही इनफ्ल्युएंजाने मुझे भी अपने ुलमें धर दबाया। मैं अशक्त हो गया। सर्वत्र निराशा दीखने ी। वहाँ किसीसे मैं परिचित भी नहीं था। अकेला ही था। ीसे विशेष घबरा गया। पासमें विशेष पैसे भी नहीं थे, जिससे घर ही किसी प्रकार जा सकूँ। बहुत बड़े चक्करमें पड़ गया। ी समय वर्षा भी होने लगी। ऐसी विपत्तिमें कोई बात पूछने-ला भी नहीं दिखायी पड़ रहा था। तीन बज रहे थे। बुखार ोंसे चढ़ा था। जिस मन्दिरमें रुका था, वह भी वर्षाके आघात सहन करनेमें असमर्थ था। ऐसी स्थितिमें मैं रामायणकी चौपाई धीरे-धीरे पढ़ने उगा।

उसी समय एक बुढ़िया माई मेरे पास आयी और बिना कुछ -सुने ही मेरा लाउड स्पीकर, हारमोनियम और सारा सामान ा लिया और बोली 'बाबा चलो।' मैं भी बिना किसी हिच-चाहटके लड़खड़ाते हुए चल पड़ा। वहाँ जाकर मैं लेट गया। ी नींद आ गयी। पाँच बजे उठा तो देखा कि बुढ़िया भीगी मेरी चारपाईके पास बैठी रो रही है। मैंने पानी माँगा। ढ़ियाने पानी देते हुए कहा—'बेटा! तू जल्दीसे अच्छा हो जा।' वा कहकर उसने 'एस्प्रो' की दो टिकिया मुझे पानीके साथ ला दी। मुझे। मुझे कुछ आराम मालूम पड़ा। रात्रिमें बिना

कुछ खाये ही मैं सो गया । जब दो बजे रात नींद खुली तो बुढ़िया बैठी है । उसकी आँखोंसे प्रेमाश्रु ढल रहे हैं । मैंने कहा-तू बैठकर रोती क्यों है ?' बुढ़ियाने आँसू पोंछते हुए कहा—' सो जा, कुछ नहीं । मैं सो रही थी; अभी तो आयी हूँ । बेचारी प्रकार प्यार करती मुझे चाय बनाकर पिलाती और सेवा कर वैसे यह बीमारी तीन दिनोंके पहले नहीं समाप्त होती, पर मैं दो दिनोंमें पूर्ण स्वस्थ हो गया । स्वस्थ होने पर कथा हुई । लोग यहाँ भोजनके लिये आमन्त्रित करते, अच्छा स्थान भी रहनेके देते, पर बुढ़ियाके वात्सल्यभावको देखकर मैं कहीं नहीं गया समाप्त होनेपर दो सौ दक्षिणा स्वरूप प्राप्त हुए । मैंने अपने बुढ़िया माईके चरणोंमें लेजाकर इस पत्र-पुष्पको समर्पित कर आग्रह करने पर बुढ़िया माईने कहा—'बेटा ! मेरे ऐसे भाग्य जो मैं सेवा कर सकूँ । मैं अपनेको धन्य समझती हूँ कि तू सेवा स्वीकार की । 'बेटा ! मेरी दक्षिणा तो यही होगी कि तू इस अभागिन माँकी सेवा स्वीकार करता रह ।' बुढ़िया म इस स्नेहभरी वाणीको श्रवणकर मैं आनन्दविभोर हो गया । इस भावको देखकर हृदयमें श्रद्धाकी लहर उमड़ पड़ी । उसने और देकर २००) वापस कर दिये ।

आज भी जब मैं इस सेवा-मूर्तिका पवित्र स्मरण करता मेरे नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलछला आते हैं ।

—कुमुदजी कथावाचक, बी० ए०, साहि



भिखारिनके भेषमें पवित्र संस्कार-मूर्ति

अहमदाबादसे मैं भावनगर आ रहा था। शामका समय था। ःकट लेकर मैं गाड़ीमें बैठ गया। डिब्बेमें अबतक रोशनी नहीं हुई ी। चारों ओर मुसाफिरोंकी चहल-पहल, गाड़ीकी सीटीकी तीखी ावाज और इंजिनकी घरघराहटसे वातावरण कम्पायमान था।

मेरे सामने ही एक भाई रेशमी कपड़ोंसे सुसज्जित बैठे थे। ्यापारी-जैसे लगते थे। बहुत भीड़ थी और गरमी भी बहुत थी। खा चल नहीं रहा था। डिब्बेमें रोशनी भी नहीं थी। गाड़ी खुलने कुछ देर थी। इसलिये वे भाई अपने पासकी दो थैलियोंको सीट र रखकर ठंडी हवामें मन बहलानेके लिये नीचे उतर पड़े।

कुछ समय बाद गाड़ी खुलनेकी तैयारी होने लगी। डिब्बेमें ोशनी हो गयी। पंखे चलने लगे। वे सज्जन डिब्बेमें आ गये। रंतु देखा तो दोनों थैलियाँ गायब। इधर-उधर देखा, नजर दौड़ायी, रंतु थैलियाँ कहीं दिखायी न दीं। उनका चेहरा पीला पड़ गया। ुहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। आँखें डबडबा आयीं। 'क्य हुआ ?' ्या हुआ ?' की आवाज चारों ओरसे आने लगी। उन्होंने कहा— उन थैलियोंमें मेरा दो हजार रुपयेका रेशमी कपड़ा था। मैं कपड़े ा व्यापार करता हूँ।' डिब्बेके सारे मुसाफिरोंने सब ओर ढूंढा, ावने निराश होकर यही कहा—'अँधेरे और भीड़का लाभ उठाकर किसी चोर उचक्केने हाथ मारा है।' वह व्यापारी बेचारे मन ्सोसकर बैठ गये। उनकी आँखोंके सामने तितलियाँ उड़ने लगीं।

गाड़ी चल दी।

परंतु जब धोलका स्टेशन आया, तब मानो एक चमत्कार हुआ। डिब्बेके बाहर कोई चिल्ला रहा था—'किसीकी थैलियाँ गयी हैं, थैलियाँ ?' आवाज सुनते ही वे सज्जन मानो नींदसे उठे हों—खड़े होकर जोरसे आवाज लगाकर उसे बुलाने लगे। दूसरे यात्री भी सजग हो गये। दरवाजा खोला तो देखा कि और फटे पुराने कपड़े पहने एक भिखारिन-जैसी स्त्री दोनों हाथों थैलियाँ लिये खड़ी है।

उन सज्जनके मानों जान आ गयी, उन्होंने कहा—'ये दोनों मेरी ही थैलियाँ हैं। बहन! आपको कैसे मिलीं ?'

स्त्रीने कहा—'क्षमा करना भाई! मेरा बेसमझ लड़का अहमदाबादके स्टेशनपर न जाने कहाँसे इनको ले आया। मैंने उसको बहुत पीटा और कहा कि मजदूरी करना भीख माँगकर खाना, पर कभी भी चोरी मत करना। पिछले पापोंसे तो हमारी यह दशा हो गयी है! अब फिर चोरी करेंगे तो अगले जन्ममें हमारी पता नहीं कैसी भयानक दुर्दशा होगी।

व्यापारी फूला नहीं समाता था। वह अपनी जेबसे पाँच रुपयेका नोट निकालकर उस स्त्रीको देने लगा। स्त्रीने पहले तो इनकार किया और साफ-साफ ना कह दी, परंतु दूसरे यात्रियोंके आग्रह अन्तमें ले लिया।

हम सब इस प्रसंगको देखकर हैरान हो गये। भिखारिन भेषमें छिपी वह भारतकी पवित्र संस्कार-मूर्ति अँधेरेमें अदृश्य हो गयी। हम उसकी मूक वन्दना करने लगे।

रमाशंकर ना०



गरीबकी परोपकार-वृत्ति

गत आषाढ़ कृष्ण चतुर्थीकी बात है। मैं और सुखदेव ठाकुर ोवनसे साइकलद्वारा रामचन्द्रपुर जा रहे थे। मेरे पास दो मनी-गोमें पाँच हजार रुपये थे—एकमें तीन हजार और दूसरेमें दो जार।

हम दोनों बड़ी तेजीसे साइकल चला रहे थे—रास्तेमें कहाँ क्या आ सो तो पता नहीं, रामचन्द्रपुर पहुँचकर जब मनीबेग निकालने गे तो तीन हजारवाली तो मिल गयी, पर दो हजार वाली गायब ो। हमारे शरीरपर मानों बिजली-सी मार गयी। मुँह फीका पड़ या। मनमें कई प्रकारके तूफान उठने लगे। यह निश्चय हो गया ब मनीबेग नहीं मिलेगी। फिर भी मैं साइकलसे उसी रास्तेसे लौटा, द्यपि पैर भारी हो गये थे। साइकल चलायी नहीं जा रही थी, थापि मैं आगे बढ़ता गया। इधर-उधर बड़ी तीखी नजरसे देखता गभग दो माइलतक चला गया। इतनेमें सुनायी दिया—पीछेसे कोई ादमी पुकार रहा है और दौड़ा चला आ रहा है। मेरी रुकने-ी इच्छा नहीं थी, मन बहुत खराब था। पर मैं कुछ रुका-इतनेमें ह आदमी मेरे पास आ गया। फटे-मैले कपड़ेसे लाज ढक रक्खी ी उसने, बड़ा ही गरीब जान पड़ता था। उसके चिपके गाल, सी आँखें, निकली हुई दाँतें और चमकती हुई हड्डियाँ तथा नसें सकी मूर्तिमान् दरिद्रताके दर्शन करा रही थीं। उसने समीप ाकर बड़े प्रेमसे मुझको नमस्कार किया और कहा—'बाबूजी ! यह ग आपहीकी है। मैंने दूरसे इसको आपकी जेबसे गिरते देखा था।

मैंने इसे उठाया, इतनेमें आप बड़ी तेजीसे बहुत दूर निकल गये मैंने आवाज दी, पर आप सुन नहीं पाये। आखिर मैं यह सोचकर यहीं बैठ गया कि बैग न मिलनेपर बाबूजीको बड़ा दुःख होगा और वे इसी रास्ते उसे खोजने आयेंगे, तब मैं उन्हें दे दूंगा। अब आपकी बैग सँभालिये।'

उस गरीबकी परोपकार-वृत्ति, ईमानदारी देखकर मैं गद्गद हो गया। मेरा मुरझाया हुआ मुख-कमल खिल उठा। मेरा रोम-रोम उसके उपकारसे दब गया। मैंने पचीस रुपये कठिनतासे उसको दिये!

नवरत्नमल नाहटा



अमृतका प्रवाह

रामवदन और हरजीवन दोनों सगे भाई थे, खेतीका काम था। ोनोंमें बड़ा प्रेम था। पिता-माता छोटी अवस्थामें मर गये थे। तएव बड़े भाई रामवदन और उसकी स्त्री कौसिल्याने ही रजीवनको बड़े प्यारसे पाला-पोसा, उसका ब्याह किया। रजीवनकी स्त्री गौरी घर आयी। वह कुछ ईर्ष्यालु तथा कड़े ाजाज की थी। वह अपनी जेठानी तथा उसके दोनों बच्चे—रामू ार पमियाके साथ रूखा व्यवहार करती। जेठानी कौसिल्या बड़े 'शाल हृदयकी महिला थी। वह उसके रूखे व्यवहारको देखकर ा देती और सदा सच्चे स्नेहका ही बर्ताव करती। उसके दोषोंको ापाती। पतिके सामने उसकी जरा भी निन्दा नहीं करती। बल्कि उके गुणोंकी प्रसंसा करती। पत्नीके व्यवहारसे हरजीवनको दुःख वहुत होता, पर वह पत्नीकी नाराजीके भयसे कुछ बोलता नहीं। न्तु वह उसकी शिकायत भी नहीं सुनता। इससे वह और भी ड़ती। उसका दुर्व्यवहार बढ़ता गया। पर कौसिल्यापर और सके कारण रामवदनपर वह कुछ भी असर नहीं डाल सका। गौरीको मानस रोगसे ग्रस्त समझकर उसकी भूलोंपर ध्यान नहीं े और सदा उसपर कृपा तथा प्रीति ही करते।

एक दिन गौरी झुंझलायी हुई-सी रसोई बना रही थी। ौसिल्याका लड़का रामू भूखा था। निर्दोष बच्चेके मनमें कोई दभाव नहीं था। वह जैसा मांको समझता, वैसा ही चाचीको। ; कभी-कभी चाचीकी डरावनी सूरत देखकर कुछ सहम-सा

जरूर जाता। वह चाचीके पास रसोईमें आया और कुछ खाने॰ माँगने लगा। कौसिल्या दूसरे काममें लगी थी। घरपर पुरुषोंमें ॰ कोई नहीं था। गौरीने बच्चेको दुत्कार दिया और कहा—'चल जा, सीधा-सा यहाँसे, अपनी माँ आये तब खानेको माँगना। मुझ॰ ची-चपड़ की तो जलती लकड़ीसे पीटूँगी।' एक बार बच्चा कु॰ डरा तो सही, पर चार-सालका भोला था, भूख लगी थी। व॰ समझा ही नहीं-चाची क्या कह रही है और उसने फिर जरा जोर॰ चिल्लाकर रोटी माँगी। गौरी झुँझलायी हुई थी ही। जलती लकड़॰ चूल्हेसे निकालकर फेंकी, लड़केके पैरपर लकड़ी गिरी। लड़क॰ चिल्लाया, कौसिल्या दौड़ी आयी। देखा तो लड़केके पैरमें कुछ चो॰ लगी है और कुछ जल भी गया है। गौरीने गुस्सेमें आकर य॰ काण्ड कर तो दिया, पर अब वह भी डर रही थी। कहीं हरजीवन॰ को पता लग गया तो पता नहीं क्या हो जायगा, क्योंकि वह इ॰ दिनों गौरीकी हरकतोंसे बहुत दुखी था। कई बार वह कह चुक॰ था—'घरसे निकल जाऊँगा या मर जाऊँगा।'

वह रामूके पास आकर उदास खड़ी थी, देख रही थी—जेठान॰ कौसिल्या क्या करती है। कौसिल्याने कहा—'बहिन! डर म॰ यों भूल हो ही जाया करती है। लड़का कहीं दौड़ता हुआ गि॰ पड़ता तो चोट लगती या नहीं। यहाँ भी वैसे ही लग गयी॰ फिर बच्चेसे कहा—'बेटा! जा, चाची तुझे लड्डू देगी और॰ अभी तेरा पैर धोकर पट्टी बाँध देती हूँ। तू रो मत।' रामू॰ लड्डूके नामसे रोना बंद कर दिया। कौसिल्याने आलू पीसक॰ जलेपर बाँध दिये और चोटपर पट्टी लगा दी। गौरीका तो हृद॰ ही बदल गया। उसने सोचा—'मैंने आजतक दुर्व्यवहार करते॰

ोई कसर नहीं रक्खी। पर सहन करनेमें कौसिल्या मुझसे बहुत ागे बढ़ गयी। आज तो मेरे दुर्व्यवहारकी सीमा ही नहीं रही। तनेपर भी कौसिल्याका यह सद्व्यवहार, यह शान्ति और मेरे ति यह स्नेह!' उसका हृदय द्रवित हो गया। आँखोंसे अनुताप ौर श्रद्धाके मिश्रित आँसू वह चले। वह दौड़कर लड्डू लायी ौर अपनी गोदमें बैठाकर बड़े प्यारसे रामूको खिलाने लगी।

इतनेमें दोनों भाई घर आ गये। उन्होंने रामूको गौरीकी गोदमें ठे लड्डू खाते देखा तो वे चकित हो गये। गौरीने सलज्जभावसे ह फिरा लिया। कौसिल्या बोली—'धूपके लिये अँगारे ला रही ी। रास्तेमें एक अँगारा गिर गया। रामू दौड़ा आ रहा था, गारा छूते ही चिल्लाकर गिर गया। जरा-सी चोट लग गयी और छ दाग गया। गौरीने दौड़कर मरहम-पट्टी कर दी और अब बड़े ेहसे वह अपने बेटेको लड्डू खिला रही है।

सचमुच रामू आज गौरीका लाड़ला बेटा हो गया। सब ओर सन्नता छा गयी। कौसिल्याकी सहिष्णुता, स्नेह तथा सद्व्यवहार- घरमें सब ओर अमृतका प्रवाह बहा दिया।

—गोपाल अवस्थी



कर्जका भय

दो साल पहलेकी बात है। हीरालाल नामक एक कि आया और मुझसे पूछने लगा—'तुम सागरमलजीके लड़के हो क्या मेरे 'हाँ' कहनेपर वह सौ रुपये निकालकर देने लगा और बोल 'बहुत दिन हुए, मैं तुम्हारे पिताजीसे एक सौ रुपये उधार ले ग था। उस समय तुम बहुत छोटे थे। अबतक मैं वे रुपये नहीं लौ सका। अब मेरे पास रुपये जुटे हैं, तब लेकर आया हूँ।' मैं उस ओर देखता रह गया। तब उसने फिर कहा—'मैं तुम्हारे पैर पक ड़ता हूँ। मुझे कर्जसे मुक्त कर दो। मैं ब्याज नहीं दे सकूंगा। किसी तरह बड़ी कठिनतासे रुपये इकट्ठे कर पाया हूँ। मुझे कर्जका बड़ा भय है बाबू!' यों कहकर वह बार-बार हाथ-पं जोड़ने लगा।

मैंने सोचा, कितना ईमानदार और कर्जसे डरनेवाला है यह किसान। बड़े-बड़े लोग भी आज कानूनसे बचकर रुपये हजम क जाते हैं। मैंने चाचीजीसे बिना पूछे ही रुपये ले लिये तथा उस कह दिया—'तुम कर्जसे मुक्त हो गये।' वह प्रसन्न होकर चल गया।

ये रुपये लगभग पचीस वर्ष पहलेके थे। हमारे पास कोई सं हिसाब नहीं था। यहाँतककी चाचीका भी याद नहीं था।

किसानकी इस ईमानदारीको देखकर भगवान्से यह प्रार्थना की जाती है कि हम सबको भगवान् ऐसी ही सद्बुद्धि दें।

—हरीराम केडि



नष्ट नीड

वह मुझे बहुत बुरा लग रहा था। टेबलपर कुर्सी रखकर मैंने : खींचकर जमीनपर पटक दिया। कुछ पीला-सा द्रव पदार्थ और त कण फर्शपर बिखर गये। अंदर बैठी चिड़िया चूं-चूं करती : गयी। वह पंख फड़फड़ाती अपने टूटे घोंसलेतक आती और : लौट जाती। उसका यह क्रम बहुत समयतक चलता रहा।

किताब लेकर पढ़ने बैठा, पर काले शब्दोंके बीच मुझे यत्र-त्र अनेक चिड़ियोंके छोटे-छोटे गुलाबकी पंखुड़ियों-से बच्चे दीख ड़े, मैंने पुस्तक पटक दी।

भोजन करने बैठा, पर मुझे दीखा—जैसे मेरी थालमें दालके थानपर पीला-सा द्रव-पदार्थ और रोटीके स्थानपर वही अण्डोंके ्त कण परोसे गये हैं। मैं उठ गया।

बाहर आकर खुले आँगनमें घूमने लगा, पर दूर क्षितिजसे ्कके बाद एक दैत्याकार श्वेत अण्डे आते और मेरे निकट आते-ाते सूक्ष्म होकर फूट जाते। मेरी नजरोंमें वही पीला तरल पदार्थ ौर श्वेत कण तैरने लगे।

सोचा, बाहर घूम आऊँ। नदी-किनारे रेतमें बड़ी देर बैठा हा, पर चिड़ियोंके लाख-लाख झुंड एक साथ आकर मेरे सामने ारुण क्रन्दन करने लगे।

'ऊँह! ये सब क्या पागलपन है। मैं फिजूल जरा-सी बातको ोचकर इतना परेशान हो रहा हूँ, क्या हो गया। यह भी कोई उद्विग्न होनेवाली घटना है?' सोचकर मैंने सिरको हल्का-सा

झटका दिया और उठ खड़ा हुआ।

घर आया तो पत्नीने बताया, मुन्नेको तेज बुखार है। दे
सचमुच बुखार तेज था।

——'दिनभर पानीसे खेलता रहता है। सर्दी लग गयी
उतर जायगा।'

चार दिनतक बुखारकी हालतमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। डाक्ट
को बुलाया तो बताया—'टाइफायड'।

मुन्ना सुबहसे बेहोशीकी दशामें था। शरीरका तापमान १
से कम नहीं हो रहा था। दूधकी पट्टियाँ चढ़ानेके पश्चात् भी हा
चिन्तनीय हो गयी। हम दोनों ११ बजे राततक मुन्नाके बिस्त
निकट बैठे रहे। मौन, शान्त! बहुत चाहनेपर भी मैं इस अ
विचारको हृदयसे नहीं निकाल सका कि प्रभुने मुझे अपने अपराध
फल दिया है। मैंने क्यों उन निरपराध चिड़ियोंके अण्डोंको न
किया और फिर वही क्रन्दन करती चिड़िया, तरल पीत द्रव, श
कण, लाल-लाल मासूम बच्चे। विचारोंमें तल्लीन मैं सो गया

रातके दो बजे थे। मैं चीखकर उठ बैठा।

'नहीं, ऐसा मत करो। उसका कोई अपराध नहीं। भगवा
लिये मुझपर दया करो। क्षमा कर दो मुझे।'

मैं रोया, गिड़गिड़ाया, प्रार्थना की, पर उस क्रूर विक
दैत्यने मेरे मुन्नेकी टाँग पकड़कर जमीनपर पछाड़ दिया। वही
पीला तरल पदार्थ और हड्डियोंके श्वेत कण मेरे सामने बिखर ग

उफ! कितना वीभत्स स्वप्न था। मेरी साँस जोरोंसे च
लगी। पत्नी जाग गयी थी। मुन्ना बेहोश था।

'क्या हुआ?'

'कुछ नहीं ।' मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया ।

'मुझे क्षमा कर दो प्रभो ! मैंने यह सब जान-बूझकर नहीं किया था । इतना कठोर दण्ड न दो भगवन् ! मैं सहन नहीं कर सकूँगा । मेरे बच्चेके प्राणोंकी भीख । इस बार मुझे निर्दोष समझकर दया कर दो देव !' मैं बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रो पड़ा और मेरी हिचकियाँ तब बन्द हुईं जब मुन्नेने आँखें खोलकर क्षीण आवाज में कहा—'पानी ।'

घटना दो माह पूर्वकी है । मुन्ना पहलेसे अधिक स्वस्थ है । उस समयसे मैं हमेशा इसी प्रयत्नमें रहता हूँ कि मुझसे कभी कोई निरपराध जीव-हिंसा न हो जाय ।

बाबा तुलसीदासकी एक ही चौपाई हर समय हृदयपर एक प्रहार करती जान पड़ती है और मैं पुनः अपने स्थानपर आ जाता हूँ पथभ्रष्ट होनेपर भी ।

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥

—मोहनलाल चतर



सहिष्णुता

जब कभी दिवाली आती है तो मेरे मानसमें एक विशेष प्रतिक्रिया होती है। सन् १९५३ में मेरे फूफाजी रामदेवरा स्टेशन (उत्तर रेलवे) पर सहायक स्टेशनमास्टर थे।

दिवालीके दूसरे दिन प्रायः बच्चोंको पटाके छोड़नेको मिलते हैं। हमें भी परम्परानुसार पटाके मिले। बच्चोंमें विचार-शक्ति तो होती नहीं। उनके लिये तो हर स्थल क्रीडालय है। मैंने और मेरी बुआके लड़केने मिलकर पटाके कमरेके अंदर ही छोड़ने शुरू किये। सहसा मेरे एक सम्बन्धीका बच्चा हाथमें तारावत्ती लिये कमरेमें आ घुसा और लगा उसे घुमाने। कमरेकी अलगनीपर रेशमी तथा ऊनी वस्त्र और शाल लटक रहे थे। एक चिनगारी उनको छू गयी और बात-की-बातमें धू-धूकर सारे कपड़े जल गये। बच्चा होनेके कारण मैं आग बुझानेमें असमर्थ था, इसलिये 'लाय-लाय' कहकर मैं चिल्लाया। मेरी आवाज सुनकर मेरी फूफी आयी और उसने मटकेभर पानीसे आग बुझायी। कपड़े सब जल चुके थे। मेरे फूफाजी स्टेशनपर अपनी ड्यूटीपर थे। वे आये। अपनी गाढ़ी कमाईसे खरीदी हुई चीजोंका हाल देखा और सिर्फ इतना ही कहा —'जल गयी तो जल गयी। बच्चोंको पीटनेसे या भाग्यको कोसने क्या होता है।

उनके ये वचन मुझे आज भी स्मरण हैं। ५००), ६००) रु० का माल नष्ट होता देखकर भी जिसने उफ तक न किया, वह देवता नहीं तो और क्या है।

—सुन्दरलाल बोहरा



परमिट

तीन दिनोंसे लगातार वर्षा हो रही थी। आज लोगोंने सूर्यदर्शनका सौभाग्य प्राप्त किया। साइकल मरम्मतके लिये दी हुई होनेसे आज मैं पैदल चलकर ही आफिस पहुँचा और क्लर्कोंके सलाम स्वीकार कर अपनी कुरसीपर बैठ गया। कुछ ही देरमें एक गरीब-सा दीखनेवाला आदमी आया। उसने सीधे मेरे पास कहा—'बाबूजी! परमिट काट दीजिये न, घरमें जगह-जगह पानी चू रहा है, घर जलसे भर गया है।' वह आशाभरी नजरसे मेरी ओर देखता रहा। मैंने कहा—'अर्जी दो, दो-एक दिनमें मिल जायगा।' उसने लाचारीभरे गुस्सेसे कहा—'बाबूजी! अर्जी तो कितनी ही, कितनी ही बार दी जा चुकी है; परंतु न तो परिमिट ही मिलता है, न कोई उत्तर ही।' मैंने कहा—'भाई! तुम्हारी सारी अर्जियाँ, पता नहीं, कहाँ बह जायँगी और तुम्हें इस चौमासेमें आवश्यक सीमेंट अगले दो चौमासे बीत जानेपर भी नहीं मिलेगा। वह एकदम निराश हो गया। मैंने फिर कहा—'यों अर्जियाँ देनेसे परिमिट कभी नहीं मिलेगा। दो-पाँच रुपये हों तो निकालो, अभी परमिट काट दूँ।' वह निराश-मुख धीरे-धीरे चलकर आफिससे बाहर निकल गया। मैं भी अपने नित्यके काममें लग गया।

कुछ ही समय बाद एक बड़ी तोंदवाले सेठजी आये। मैं तुरंत उन्हें लेने सामने गया और मैंने कहा—'आपने क्यों तकलीफ की, कहला दिया होता तो मैं ही आपके घर आ जाता।'

'तकलीफ क्या है भाई ! घरकी ओर जा रहा था तो मन आया कि चलो भाईकी खबर पूछ आऊँ।'

'आपकी कृपा है।'

'ठीक है भाई, पर अपनी उन ५० बोरियोंका क्या हुआ ?' सेठ आखिर मुद्देकी बातपर आ गये।

'तैयार ही है, आप न आये होते तो मैं स्वयं आकर आपको दे जाता।' मैंने विनयके साथ कहा।

'मैं तुम्हें भूलूँगा नहीं, अपनी रकम कल बँगलेसे ले आना' सेठजीने कहा। तथा वे मुसकराते हुए आफिससे बाहर चले गये। मैं उन्हें पहुँचाने कारतक गया। सेठने मुझे फिर परमिट की याद दिलायी और देखते-ही-देखते उनकी कार धूल उड़ाती हुई अदृश्य हो गयी।

शामको काम निपटाकर मैं बाहर निकला और टहलता हुआ चलने लगा। सेठसे मिलनेवाले पैसोंको किस काममें लगाया जाय—मेरा मन इसीकी उधेड़-बुनमें लगा था। आकाशमें मेघराजने अपनी सृष्टि-रचना आरम्भ की। कुछ ही क्षणोंमें गाज-बीजके साथ बरसात शुरू हो गयी। भाग्यकी बात, आज मैं छत्ता भी घर भूल आया था। इतनेमें आशाकी किरण-सरीखी सेठकी कार आती दिखायी दी। मैंने हाथ उठाकर कार रुकवायी और कहा कि 'घरकी ओर जाते हों तो मुझे ले चलें।' सेठने कहा—'दुःख है, मुझे दूसरे कामसे जाना है।' और रास्तेके कीचड़को उछालती हुई सेठकी कार पूरी चालसे चली गयी। मैंने सेठकी कारको अपने घरकी ओर मुड़ते दूरसे देखा। मेरे मनमें सेठके प्रति छिपा तिरस्कार पैदा हो गया। सेठके विचारोंको छोड़कर मैंने देखा तो मैं

ा भींग गया था। चलते रहनेसे सर्दी लगनेका डर था, इसलिये
े रास्तेसे एक ओर जाकर एक घरके छप्परके नीचे आश्रय लिया।
ाबूजी! अंदर चले आइये न, आपका ही घर है।' घरके मालिक-
ी प्रेमभरी आवाज सुनायी दी। मैंने देखा—जिसको मैंने दिनमें
फिससे फटकारकर निकाल दिया था, वही इस समय अपने घरमें
ड़े प्रेमसे मेरा स्वागत कर रहा है।

मुझे बड़ी शरम आयी। मैं अन्दर चला गया; देखा तो आधे
रमें पानी भर रहा था। एक ओर जरा-सी सूखी जगहमें एक
च्चा सोया था। वर्षा अभी मूसलाधार बरस रही थी। छत जगह-
गहसे चू रही थी। मकान-मालिककी आवाज सुनकर मैं विचार-
िद्रासे जागा। वे कह रहे थे—'बाबूजी! आप भींगे कपड़े बदल
ीजिये, नागजी की माँ अभी भींगे कपड़ोंको सुखा लायेगी।'
न्होंने मुझे एक धोती दी, मैंने अपने भींगे कपड़े बदले। थोड़ी
देर बाद वे भाई गरम दूधका प्याला भरकर लाये और बड़ा
ाग्रह करके मुझे पिला दिया। कुछ समयके पश्चात वर्षा बन्द हो
यी। उनकी पत्नीने मेरे कपड़े ला दिये। कपड़े पूरे सूख नहीं पाये
पर मैंने उनको पहन लिया। मैं चलने लगा, तब 'जरा ठहरिये,
आपके साथ चलता हूँ। रात बहुत बीत गयी है।'—यों कहकर
ठी और लालटेन लेकर वे भाई मेरे साथ हो लिये। उनकी इस
जनताने, अपकारके बदले उपकार मुझे विचारोंमें डाल दिया। उस
दिनका सारा दृश्य मेरी आँखोंके सामने खड़ा हो गया।

'तुम्हारे-जैसे गरीब आदमीको परमिट मिलना मुश्किल है'
ादि मेरे अपमानके वचन और दीनभावसे मेरी ओर देखती हुई
नकी मूर्ति मेरे सामने खड़ी हो गयी। उनके प्रति इस प्रकारका

वर्ताव करनेके लिये मेरा मन पश्चात्तापसे भर गया। मैं वि
करने लगा—'क्या यह गरीब है? इसकी जान-पहचान नहीं
इसीसे मैंने इसको फटकार बताकर निकाल दिया! क्या यह ग
मनुष्य नहीं है? क्या इसको सीमेंटकी जितनी जरूरत है, उ
सेठको है? सीमेंट जहाँ इसकी अनिवार्य आवश्यकता है, वहाँ
सेठ तो शायद सीमेंट का उपयोग नयी कोठी बनानेमें ही करना
इसको सीमेंट न मिले और कदाचित् बरसाती हवाका असर इ
बच्चेपर हो तथा वह बीमार पड़ जाय तो यह बेचारा दवाके
कहाँसे लायेगा? इन विचारोंमें घर कब आ गया, इसका भी मु
पता नहीं लगा। घरकी सीढ़ियोंपर चढ़ते हुये मैंने उनसे कहा
'अपना सीमेंटका परिमिट कल अवश्य ले जाइयेगा।' वे हं
गद्‌गद हो गये और मेरे पैरों पड़ने लगे। मैंने उनको तुरंत उठा
कहा—'न तो मेरे पैरों पड़नेकी आवश्यकता है, न आभार मानने
आपने ही मुझको अपने सच्चे कर्तव्यका ज्ञान करवाया है।' उन्हों
कहा—'महाशयजी! मैं तो केवल निमित्त हूँ, होता तो सब कु
ईश्वर की इच्छासे है।' वह प्रसन्न होता अपने घर लौट गया
आज मैं पहली बार खूब गहरी नींद सोया। दूसरे दिन मैंने सेठ
५० बोरियोंका परिमिट रद्द कर दिया।

—जशवंत



॥ श्रीहरिः ॥

आदर्श मानव-हृदय

[पढ़ो, समझो और करो, भाग ३]

प्रकाशक :
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

मुद्रक—
उमा प्रकाशन लिमिटेड
ई/१४ औद्योगिक आस्थान
तालकटोरा रोड, लखनऊ।

सं० २०२५ से २०२९ ४०,०००
सं० २०३५ चतुर्थ संस्करण ३०,०००

७०,०००
(सत्तर हजार)

मूल्य पचास पैसे

"भारत सरकार द्वारा उपलब्ध किये गये सस्ते मूल्य के कागज पर मुद्रि

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

निवेदन

'आदर्श मानव-हृदय' के नामसे प्रकाशित होनेवाली यह पुस्तिका 'कल्याण'में प्रकाशित 'पढ़ो, समझो और करो' शीर्षकमें छपी घटनाओंके संग्रहका तीसरा भाग है। इसमें एक घटनाका 'आदर्श मानव-हृदय' शीर्षक है, अतः पुस्तिकाका वही नाम रख दिया गया है। इस संग्रहमें भी ऐसी बहुत-सी सात्त्विक प्रेरणादायक घटनाएँ हैं, जिन्हें पढ़ते-पढ़ते हृदयमें सहज ही मानवताका दिव्य प्रकाश छा जाता है और जीवनको पवित्र बनानेकी सदिच्छा जाग उठती है। पाठक इससे विशेष लाभ उठावें—यह निवेदन है। ये सभी पुस्तिकाएँ ऐसी हैं कि जिनके प्रचार-प्रसारसे मानव-कल्याणका पथ स्पष्ट और सुखदायक हो जाता है और इस प्रकार एक बड़ी मानव-सेवा होती है।

हनुमानप्रसाद पोद्दार
'सम्पादक'





विषय-सूची

++++++++

श्रीहरिः

आदर्श मानव-हृदय

[पढ़ो, समझो और करो भाग ३]

सहृदयता

एक सच्ची घटना है और इसी जनपदमें घटी हुई है। बात उन दिनोंकी है, जब जमींदारी-प्रथाका बोल-बाला था। बड़े-बड़े जमींदारोंने अपनी जमींदारीके गाँवों तथा मनुष्योंसे सम्पर्क न रखनेको ही बड़प्पन मान रक्खा था। ऐसे ही वातावरणमें पले एक बहुत बड़े जमींदार सज्जनका जवान लड़का एक दिन प्रातःकाल टहलता हुआ अपने कलमी पेड़ोंके एक बड़े बगीचेके सामने आ पहुँचा। बगीचेके रक्षक तरह-तरहके कीमती पेड़ोंको दिखलाने लगे और उनके नाम तथा गुणका विवेचन करने लगे। वह युवक टहलता हुआ वाटिकाके एक किनारे जा पहुँचा, जहाँ वाटिकाका

घेरा समाप्त होता था और किसी दूसरे का खेत शुरू होता था। उस खेतमें गेहूँ बोया था। वाटिकाके समीप पेड़ोंकी छायामें गेहूँके पौधे एक बित्तेसे अधिक नहीं बढ़ पाये थे, पर दूसरी ओर जहाँ वाटिकाके पेड़ोंकी छाया नहीं पड़ती थी, गेहूँ ऊँचे और सुपुष्ट थे। उस युवकने रक्षकोंसे पूछा—'क्यों उधरके पौधे बड़े हैं तथा इधर हमारे बगीचेके बगलके छोटे एवं बेजान हैं?' रक्षकोंने बतलाया—'हुजूर! पेड़ोंके करीब उनको धाँध मारती है, जिससे पौधे कमजोर हैं।' युवकने धाँधका अर्थ पूछा। तब नौकरोंने बताया कि 'पेड़ोंकी छायासे इन्हें धूप नहीं मिलती, नमी रहती है तथा अपने पेड़ोंकी जड़ें खेतोंमें फैल गयी हैं, इससे जहाँतक छाया जाती है, वहाँतक उपज नहीं हो पाती।' युवकने उस खेतके मालिकका नाम पूछा तो एक विधवा महिलाका नाम बतलाया गया। तब उसने कहा—'वह औरत कयामतके दिन हमसे यह सब वसूल करेगी, जो हमारी वजहसे उसका नुकसान हो रहा है। अफसोस, वालिदने इसपर ख्याल नहीं किया!' उसने उस ओरके पेड़ोंको तुरंत काटनेकी आज्ञा दी। नौकरोंने सेमल आदिके पेड़ तो काटकर गिरा दिये; किंतु फलदार बहुमूल्य पेड़ोंको काटनेसे बड़ा नुकसान होगा—कहकर रुक गये। पर युवकने उनकी एक न सुनी और सब पेड़ कटवा दिये। इतना ही नहीं, गल्लेका हिसाब लगाकर खेतवाली महिलाके घर भिजवा दिया। इस तरह कलियुगमें सत्ययुगका उदय हो गया। बहुत-से लोगोंने इससे प्रेरणा प्राप्त की।

—गणपतिकृष्ण त्रिपाठी



अध्यापकका आदर्श

उस दिन मैं मास्टर श्रीअमरनाथ उक्खलसे मिलने गया। 'पढ़ो और बनो' शीर्षक हालमें ही प्रकाशित अपने बालोपयोगी कहानी-संग्रहपर उनकी सम्मति लेनी थी।

मास्टरजी काश्मीरी पण्डित हैं। उनकी गणना दिल्लीके गणमान्य नागरिकोंमें है। बड़े ही मिलनसार एवं आध्यात्मिक वृत्तिके व्यक्ति हैं। अवस्था साठसे कुछ ऊपर ही होगी। सारी उम्र अध्ययन-अध्यापन और पूजा-पाठ करते बीती है। अभी कुछ दिन हुए, दिल्लीके सुप्रसिद्ध संस्कृत हायर सेकण्डरी स्कूलकी मुख्याध्यापकतासे अवकाश ग्रहण किया है। लेकिन फिर भी क्रम वही चालू है। उनके क्वार्टरका बाहरी हिस्सा विभिन्न श्रेणियोंके छात्रोंसे भरा ही रहता है। और क्यों न भरा रहे। मास्टरजी मुक्तहस्त मुक्तहृदय होकर विद्या-प्रसादका वितरण जो करते रहते हैं।

'पढ़ो और बनो' पुस्तकका लक्ष्य बालकोंको चरित्रवान् बननेकी प्रेरणा देना है; अतः उसपर वार्तालाप होते-होते बात चल पड़ी इस विषयपर कि बालकोंका चरित्र-निर्माण किस प्रकार हो। मास्टरजी बोले--

'भाई! बनाया तो बनकर ही जाता है। माता-पिता और अध्यापक स्वयं चरित्रवान् बने तो बालकोंको बनते देर नहीं लगती। बिना चीख-पुकार मचाये, डाँट-डपट किये, मार लगाये ही बन जाते हैं वे। ये उपाय चूक सकते हैं, उल्टे भी पड़ सकते हैं; किंतु 'बनकर बनाना कदापि नहीं चूकता। कहना तक नहीं पड़ता इसमें तो। अपने ही जीवनका एक संस्मरण सुनाऊँ! सुनोगे?'

'सुनाइये, इससे अच्छी क्या बात होगी।' मैंने विनम्रतापूर्वक उत्साह प्रदर्शित करते हुए कहा। मास्टरजी सुनाने लगे—

'लगभग पंद्रह वर्ष पहलेकी बात है। संस्कृत-स्कूलमें ही मुख्याध्यापक था उन दिनों मैं। एक दिन शिक्षासम्बन्धी किसी समितिकी बैठकमें सम्मिलित होकर लौट रहा था कि स्कूलके बगलकी सड़कपर आठवीं श्रेणीके एक छात्रको मैंने देखा कि इधर-उधर निगाह डालता चोरी-चोरी छिपे-छिपे सिगरेट पी रहा है। मैं उसकी निगाहमें न पड़कर स्कूलमें आ धमसे अपनी कुर्सीपर बैठ गया। मेरी जान-सी निकल गयी थी। मुझे गहरी चोट पहुँची थी। मेरा विद्यार्थी और सिगरेट पिये—यह बात मुझे बुरी तरह खल रही थी; पर सर्वाधिक जो बात मुझे साल रही थी, वह यह थी कि मैं कहूँ किस मुँहसे उसे सिगरेट छोड़नेके लिये। जो मैं कर रहा हूँ अपने विद्यार्थियोंके साथ, वही तो वह मेरे साथ कर रहा है। मैं उनसे छिपकर सिगरेट पीता हूँ, वह मुझसे छिपकर पी रहा है। मुझमें उसमें अन्तर क्या है?'

'तो क्या आप पहले सिगरेट पिया करते थे?'

मैंने बीचमें ही बात काटकर कुछ आश्चर्यसे पूछा।

'हाँ, बीस वर्षकी अवस्थासे ही।' कुछ लज्जानुभूति करते हुए उन्होंने उत्तर दिया और फिर अपनी बात आगे बढ़ायी—

तो मैं सोचने लगा, जबतक मैं स्वयं न छोड़ूँ, कैसे उसे छोड़नेको कह सकता हूँ। किंतु छोड़ना भी तो टेढ़ी खीर थी; खालाजीका घर नहीं; आप ही सोचिये—पचीस वर्षसे चली आ रही कुटेवका छोड़ना कुछ अर्थ रखता है। ज्यों-ज्यों छोड़नेकी सोचता जी छूटता। साहस न पड़ता इस डगरपर पैर धरनेका, लेकिन न

छोड़नेसे भी चल नहीं सकता था। विद्यार्थियोंके लिये मेरा जीवन था। मुझे अपने विद्यार्थीको बचाना था। 'किंकर्तव्य-विमूढ़' मुझमें साहस प्रेरणाकी बिजली चमकी। मुझे 'निर्बलके बल राम' इस पंक्तिका स्मरण हो आया। मुझे राह सूझ गयी। नये जीवनसे भर गया मैं।

उसी दिन मैंने वृन्दावन का टिकट कटाया और वहाँ पहुँचकर मैं अपने इष्टदेव भगवान् श्रीबिहारीजीके चरणारविन्दोंमें पड़कर जार-जार रोने लगा—कातरकण्ठसे उन्हें पुकारने लगा। उनसे कहने लगा—'दीनदयालो! परम करुणामय, मेरे पतितपावन! मुझ दीन अकिंचनके सर्वस्व! मुझपर दया करो, तरस खाओ, मेरी यह कुटेव छुड़ाओ, ताकि मैं अपने कर्तव्यका सम्यक् रीतिसे पालन कर सकूँ। मैं निर्बल हूँ, मेरे छोड़े यह छूट नहीं सकती। मेरे बल तुम हो, मेरी लाज रक्खो; मेरी लाज तुम्हारी लाज है, अपनी लाज रक्खो।'

और जाने क्या-क्या कहा मैंने अपने बिहारीजीसे उस दिन। सार बात यह कि बिहारीजीके चरणोंमें बैठ सिगरेट पीना छोड़, चार-पाँच दिन वृन्दावन रह मैं दिल्ली लौट आया। आते ही मैंने उस छात्रको अपने पास बुलाकर कहा—

'बेटा! तुम सिगरेट पीते हो!'

एक क्षणको लजाया-सकपकाया वह। फिर पश्चात्ताप-विगलित किंतु शान्त निर्भय स्वरमें उत्तर दिया उसने—

'जी, पीता तो था, किंतु पाँच दिनसे छोड़ दी है।'

'पाँच दिन से!'

'जी, हाँ।'

और मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही। वह उसी दिनकी बात

कर रहा था, जिस दिन मैंने छोड़ी थी। मैं गद्‌गद होकर मन-ही-मन अपने विहारीजीके चारु चरणारविन्दोंमें झुक गया—लोटनियाँ लेने लगा। मुझे कहना भी न पड़ा और वह छात्र सिगरेट पीना छोड़ चुका था। आप ही कहिये, क्या यह एक चमत्कार नहीं है?'

'अवश्य है, सच्चा चमत्कार है।'

—उत्तरमें सहज निकल पड़ा मेरे मुँहसे। अपने संस्मरणक वर्णन समाप्त करते-करते मास्टरजीका कण्ठ अवरुद्ध हो आया था आँखें भर आयी थीं। वे कहीं किसी और लोकमें पहुँच गये थे बहुत-कुछ वैसी ही मेरी भी दशा हो रही थी। वास्तवमें उन संस्मरणकी मार्मिकताने मुझपर गहरी छाप डाली थी। मेरी आस्तिकता तो प्रगाढ़ता लाया ही था वह; साथ ही उसने मुझे इसका भ पूरा विश्वास करा दिया था कि बनना ही बनाना है। आत्म-निर्मा ही औरोंके निर्माणकी कुंजी है—वह कुंजी, जो कभी चूकती नहं बिना आवाज किये लगती है और आदमीके लिये आदमियतके ता सहज खोलकर रख देती है।

कहना नहीं होगा, मास्टरजीके चरणोंमें बैठकर जब मैंने उनक यह संस्मरण सुना तो मेरा हृदय उनके प्रति अपूर्व श्रद्धासे भर आया औ सोचने लगा—

'काश! देश-देशके....दुनियाके और सभी अध्यापक ऐसे ही होते इसी लगनसे नयी पौधकी सँभाल करते, उसे सींचते।] तब दुनियामें निरव ही मानवका भाल उन्नत हो गया होता, उसकी गौरव गरिमाने आका छू लिया होता, दुनिया स्वर्ग बन गयी होती।

—हरिकृष्णदास गुप्त 'ह



प्रार्थनासे क्या नहीं हो सकता ?

एक रात्रिको मैं अपने अध्ययन-कक्षमें बैठी थी। परीक्षा समीप थी, अतः पढ़नेमें तल्लीन थी कि अचानक मेरा ध्यान बाहर होनेवाले परस्परके वार्तालापसे टूटा। भैया कह रहे थे कि 'कोई युवक, अस्पतालमें आया हुआ है, जिसे डाक्टरने मार्फियाके इंजेक्शन दिये थे; पर उनको सह न सकनेके कारण उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी। सभी डाक्टर उसे जवाब दे चुके थे। युवकका पिता सभीके पैरों पड़कर प्रार्थना कर रहा था कि मेरे पुत्रको बचा दीजिये। उन सज्जनका वह एकमात्र पुत्र था। युवकका विवाह हुए अभी कुछ ही मास हुए थे। पत्नी बार-बार 'इन्हें बचाइये' कहकर चेतनाहीन हो जाती थी। वे सज्जन किसी ग्रामसे आये हुए थे, अतः उस स्थानपर उनकी सहायता करनेवाला भी कोई नहीं था। पूरे शहरमें उसकी चर्चा थी। यह वार्तालाप सुनकर मेरी आँखोंसे अश्रु बह चले। मुझे रह-रहकर उस युवतीका ध्यान हो आता था, जिसका सुनहरा संसार उजड़ा जा रहा था, जिसके स्वप्न चूर-चूर हो रहे थे और हो आता था उन सज्जनका ध्यान, जिनकी समस्त आशाओंका केन्द्र और जीवनका सहारा बिछुड़ रहा था। मेरे हृदयपर आघात लगा और मैं फफक-फफककर रो पड़ी। मेरा हृदय चीख उठा—'ऐसा नहीं हो सकता। भगवान् इतने कठोर नहीं हैं।' साथ ही मैंने प्रभुसे कातर प्रार्थना की कि 'नाथ ! मेरा जीवन ले लो। मेरे पीछे किसीका संसार तो नहीं नष्ट हो रहा है। माता-पिता, बन्धु-बान्धव हैं, दो क्षण रोयेंगे और भुला देंगे; पर उस युवककी मृत्युसे एकका स्वर्णिम संसार तहस-नहस होगा तो दूसरेका अन्धकारमय।' इस प्रकार मन-ही-मन कहते-कहते मेरे चक्षु बंद हो

गये, हाथ जुड़ गये और मस्तक उस महिमामयके चरणोंमें नत हो गया । जाने कबतक मैं रोती रही, उस युवकके जीवनके लिये प्रार्थना करती रही और अन्तमें 'प्रभु ! तुम्हें मेरी पुकार सुननी ही पड़ेगी' कहकर आँसू पोंछकर पढ़ने लगी । यह उस यवककी अन्तिम निशा बतायी गयी थी । सोते समय फिर इस घटनाका स्मरण हो आया और मेरे आँसू उमड़ चले । मैं प्रार्थना करते-करते निद्राभिभूत हो गयी । प्रातःकाल भी मैंने अन्तःकरणसे उस युवकके जीवनकी प्रार्थना की और बड़ी विकलतासे प्रतीक्षा करने लगी कि क्या सूचना मिलती है । कुछ समय पश्चात् भैया लौटकर आये तो उन्होंने बताया कि 'जीवित तो है किंतु दशा पहलेसे भी खराब है । न किसीको पहचानता है, न आँख ही खोलता है और अनाप-शनाप बके जा रहा है ।' यह सुनकर फिर नयन भर आये । मैं पुनः अपने अध्ययन-कक्षमें गयी; क्योंकि यही ऐसा एकान्त स्थान था, जहाँ मैं कुछ क्षण शान्तिसे बैठ सकती थी । मैंने पुनः प्रार्थना की; मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि मेरी प्रार्थना और मेरे अश्रु निष्फल नहीं जा सकते । संध्याकालमें सूचना मिली कि अब उस युवककी दशा सुधर रही है और जीवनके लक्षण दीखने लगे हैं । मुझे अपार हर्ष हुआ कि उन सज्जनकी उजड़ती दुनियामें बहार लौट आयी । धीरे-धीरे वह युवक पूर्ण स्वस्थ हो गया और अपने निवास-स्थानपर लौट गया । वह कहाँ से आया था और कौन था—यह मैं नहीं जानती, पर इतना अवश्य है कि मेरी पुकार प्रभुने सुन ली थी । उस युवककी स्वस्थताकी सूचनाने पुनः मेरे नेत्रोंमें अश्रु ला दिये, वे प्रभुके प्रति कृतज्ञताके आँसू थे और तबसे प्रार्थना ही मेरे जीवनकी पूजा-अर्चना है ।

—स्नेहप्रभा



मानवताका दीपक

एक टी०टी०ई० से सुनी हुई घटना यहाँ लिख रहा हूँ—

एक समय कठाणसे वड़ोदातककी मेरी चेकिंग ड्यूटी थी । मैं एक डिब्बेमें चढ़ा । डिब्बेके एक कोनेमें एक अशक्त मनुष्य बड़ी बुरी हालतमें दुःखसे कराहता पड़ा था । उससे थोड़ी दूर एक खादी-धारी गृहस्थ अपने कुटुम्बके साथ छः आदमियोंकी सीटको चार मनुष्य जगह रोके बैठे थे । खादीधारी गृहस्थ उस मनुष्यकी ओर नफरतसे देख रहे थे और बड़बड़ा रहे थे ।

मैं जब सारे डिब्बेकी चेकिंग करके उन गृहस्थके पास आया, तब उन्होंने मुझसे पूछा—'इस आदमीकी टिकट आपने देखी ?'

मैंने इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया और मैं उस वृद्धके पास गया । वह मुझे देखकर घबरा गया और संकोचभरी करुणादृष्टिसे मेरी ओर देखकर बोला—'साहेब ! मेरे पास केवल ये दो रुपये हैं । आप या तो इन्हें लेकर मुझको टिकट ला दीजिये अथवा सजा कीजिये; परंतु किसी तरह मुझे बड़ोदा पहुँचा दीजिये ।' उसकी ऐसी हालत देखकर मुझे दया आयी; मैंने उसको जरा उठाया और एक अच्छी जगह आरामसे सुला दिया ।'

मेरे इस बर्तावके प्रति विरोध दिखाते हुए उन गृहस्थने कहा—'आप जैसे टी० टी० ई० तो सरकारको नुकसान पहुँचाते हैं । फिर आप

तो 'जनसेवक' कहलाते हैं। ऐसा रोगी आदमी यात्रियोंको हानि पहुँचाता है। हमारी इस हानिको दूर करना तो एक ओर रहा, आप तो उल्टा उड़ाऊ उत्तर देते हैं।'

मैंने अब जरा गरम होकर कहा—'मिस्टर ! आप यों मनमाना क्यों बोल रहे हैं ? इस मनुष्यको इधर-उधर किया जाय, क्या इसकी ऐसी स्थिति है ? यह उससे पैसे माँगनेका समय है या उसके प्रति मानवता दिखाकर उसकी मदद करना पहला कर्तव्य है ? मैं पहले मनुष्य हूँ, पीछे टी०टी०ई० हूँ। ऐसे मृत्युके मुँहमें पड़े मनुष्यको परेशान करनेमें भी कोई सज्जनता है ? आप कहते हैं कि इससे मुझको टिकटके पैसे लेने चाहिये। सो मैं आपके कथनानुसार अवश्य लूँगा। परंतु वह इस वृद्धसे नहीं, चंदा इकट्ठा करके लूँगा। इस चंदेमें 'मेरे ये दो रुपये'—इतना कहकर मैंने डिब्बेमें सबसे कहा—'किसी भी भाई-बहिनकी मानवता इस दुखी मनुष्यके प्रति जाग उठे तो उसे इस चंदेमें यथाशक्ति सहायता करनी चाहिये।' मानवताको भूलकर अपनी सुख-सुविधा देखनेवाले उस सज्जनको छोड़कर सभीने थोड़ी-बहुत मदद की और चंदेमें दस-बारह रुपये हो गये। इसी डिब्बेमें एक अंधी भजन गा-गाकर भीख माँग रही थी, उसने भी चंदेमें चार आने दिये।

सुखके सागरमें हिलोरें मारते हुए उस गृहस्थके दिलसे जहाँ मानवताका दीपक बुझ रहा था, वहाँ गरीबीमें डूबती-उतराती एक बूढ़ी भिखारिनके दिलमें मानवताका दीपक जगमगा उठा !

—मधुकान्त भट्ट



आत्माकी अन्तर्वाणी

घटना आजसे लगभग नौ वर्ष पहलेकी है। उस समय मैं केन्द्रीय सरकारके एक कार्यालयमें सहायक क्लर्क था। एक दिन अकस्मात् एक पूर्वपरिचित ठेकेदार मेरे पास आये और मुझे सात रुपये देने लगे। मेरे पूछनेपर उन्होंने उत्तर दिया कि वे यह भेंट मुझे मिठाईके लिये दे रहे थे; क्योंकि उनके कामका एक बिल मेरे द्वारा ऐकाउन्टेन्टतक पहुँच गया था। उसी सहायताके उपलक्षमें वे सात रुपये मुझे भेंट देनेके लिये मेरे पास आये थे। मैंने उनसे कहा

कि 'यह तो मेरा कर्तव्य था, आपको धन्यवाद; मैं रुपये लेनेक अधिकारी न होते हुए, रुपये स्वीकार न कर सकनेके लिये क्षमा चाहता हूँ।' परंतु वे नहीं माने और हठ करने लगे। इसी समय मेरे सहयोगी क्लर्क भी वहाँ आ गये; जो आयुमें मेरे पिताजीसे भी बड़े थे और उनका मैं हृदयसे बड़ा आदर करता था। उनके पूछने पर मैंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर मुझे डाँटकर कहा कि 'तुम मेरे कहनेसे रुपये ले लो, मैंने भी तो ले लिये हैं; तुम व्यर्थ हठ करते हो। इनको लेनेमें कोई पाप नहीं है; क्योंकि ये तुमने पहलेसे तो तय किये नहीं थे। अतः इन्हें ले ही लो।' उनका कहा टालना मैंने उचित नहीं समझा और रुपये ले लिये; परंतु मेरी अन्तरात्मा मुझे फटकार रही थी कि यह तूने अच्छा नहीं किया।

संयोगसे दो ही दिन बाद शरत्पूर्णिमाके अवसरपर मुझे सपरिवार गङ्गाजी जाना पड़ा। वहाँ पहुँचनेपर प्रथम स्नानार्थ मैं अपने लघु भ्राताको साथ लेकर गङ्गातटपर पहुँचा तो देखा, जलका प्रवाह तेज था तथा जल भी गहरा था। मुझे अकेले स्नान करनेमें भय प्रतीत हुआ; अतः मैंने अपने छोटे भाईसे कहा कि 'तुम मेरा एक हाथ पकड़ लो और मैं गोते लगाऊँ। साबुन लगाकर स्नान करनेकी मेरी सदैवसे ही आदत है, अतः मैंने सारे शरीरमें साबुन लगाया और अपना एक हाथ छोटे भाईके हाथमें पकड़ाकर गोते लगाने लगा। दुर्भाग्यसे मेरा हाथ मेरे भाईके हाथमेंसे फिसल गया, क्योंकि उसमें साबुन लगा था; और साथ ही मेरी अँगुलीमें चार मासे सोनेकी अँगूठी निकलकर गङ्गाजीकी भेंट चढ़ गयी। मैं चिन्तातुर हो उठा

और शर्मके मारे काँपने लगा।' तुरंत ही भाईने जाकर पिताजीसे कहा और वे आ गये। उन्होंने आते ही कहा—'मैंने पहले ही मना किया था कि गङ्गाजी या अन्य पवित्र नदियोंमें साबुन लगाकर नहीं नहाना चाहिये; परंतु तुम नहीं माने और अँगूठी गँवा बैठे।' मैंने उनसे प्रार्थना की कि 'आप क्रोध न करें; मुझे पूर्ण विश्वास है कि अँगूठी मिलकर रहेगी। यदि आप जानते हों तो किसी गोताखोरको बुला दीजिये।' पिताजी तुरंत घटवालियेके पास गये और उससे कहा कि किसी गोताखोरको जल्दी बुला दो, अँगूठी मिलनेपर हम प्रसन्न कर देंगे। गोताखोर आया और उसने वह स्थान बतलानेको कहा जहाँपर मैं स्नान कर रहा था; मैंने वह स्थान बता दिया और उसने लगभग डेढ़ घंटेके परिश्रमके बाद वह अँगूठी ढूँढ़ निकाली। उसने दो रुपये माँगे, जो कि उसे दे दिये गये; और तुरंत ही पाँच रुपयेका प्रसाद, जो मैंने अँगूठी खोजते समय मनमें धारणा की थी, बाँट दिया।

उसी समय मेरे भीतर आत्माकी अन्तर्वाणी हुई कि 'ये सात रुपये जिस प्रकार आये, उसी प्रकार चले गये, उनका लोभ मत कर।' मैंने भगवान्‌का कोटिशः धन्यवाद किया कि उन्होंने मेरी आँखें खोल दीं और मुझे जीवनमें कुपथके गर्तकी ओर अग्रसर होनेसे सदैवके लिये बचा दिया।

यह मेरे जीवनका प्रथम तथा अन्तिम अवसर था।

—गोकुलचन्द गुप्त

ये पतनकारी क्लब !

मेरे पास बहुत वर्षोंसे 'कल्याण' आता है और उसक जीवनपर बहुत ही प्रभाव है । ईश्वरकी कृपासे मेरा जीवन अबतक धार्मिक बीता है । आगे भी प्रभुकी कृपा रहेगी । छोटी-सी गृहस्थी है, परन्तु ईश्वरकी कृपासे सब लोग शान्तिपूर्वक रहते हैं । बच्चे भी होनहार हैं और सभी ईश्वरको माननेवाले हैं । मेरे पति दिल्लीमें X X X X अफसर हैं और बड़े सात्त्विक ईश्वर-भक्त हैं । मैं आज

अपना एक अनुभव लिखती हूँ । यह मेरे जीवनकी एक घटना है, जिसका नाम मैंने 'क्लबकी एक झाँकी' रक्खा है । वह यह है—

मैंने बहुत क्लबोंका नाम तो सुन रखा था, परंतु जानेका कभी अवसर नहीं मिला था; क्योंकि ऐसी चीजोंसे मुझे स्वाभाविक घृणा है। एक दिन किसीने मुझे बहुत ही विवश किया और मेरी इच्छा न होनेपर भी उनके आग्रहसे मुझे जाना ही पड़ा । मैंने यहाँ जो कुछ देखा, वह मैं कभी सोच भी नहीं सकती थी । मैं तो यही समझती थी, कुछ लोग वहाँपर खाते-पीते होंगे या कुछ ताश वगैरह खेलते होंगे । वह किसी तरहका मनोरंजनका स्थान होगा । परंतु वहाँका तो रंग-ढंग ही दूसरा था । हमलोगोंके पहुँचनेसे पहले ही वहाँ कव्वालीका प्रोग्राम चल रहा था । बहुत लोग बैठे थे । कुछ लोग खा रहे थे । कुछ थोड़ेसे पी रहे थे । इतनेमें कव्वालीने जोर पकड़ा और वहाँपर सुरा तथा साकी-सुराहीका ऐसा रंग जमा कि आटेमें नमकके बराबर कुछ लोगोंको छोड़कर सभी उसमें शरीक हो गये । जो कुछ मैंने प्रभाकरमें रीतिकाल (शृङ्गाररस) का प्रसङ्ग पढ़ा था, उसका नग्न दृश्य वहाँ दिखायी देने लगा । जैसे वीर-गाथा कालकी कविताएँ वीरोंको शूरवीर बनाती थीं, उसी तरह इन कव्वालियोंने पुरुषोंको पशु बनाना प्रारम्भ कर दिया और जहाँ गिलास थे, वहाँ हाथोंमें बोतलें सुशोभित हो गयीं । मुझे दुःख और आश्चर्य तो तब हुआ, जब पीनेवालोंमें स्त्रियाँ भी पुरुषोंसे पीछे नहीं रहीं । तभी मेरे दिलने यह कहा कि पश्चिमी सभ्यता अभी यहांसे गयी नहीं है, बल्कि बढ़ रही है । उस समय मैंने यह समझा कि हमारे बापूका बलिदान

और हमारे बहुत सारे नेताओंके त्यागका फल अभी अधूरा ही है। क्या इन्हीं क्लबोंके आधारपर हम अपनी पञ्चवर्षीय योजना पूरी कर सकते हैं ? जिस देशके बच्चे-बच्चेको हम साक्षर देखना चाहते हैं, उस देशके इन अग्रणी साक्षरोंका यह हाल देख-सुनकर किसको दुःख न होगा ? क्या हम अपने बच्चोंको इससे विनाशका रास्ता नहीं दिखा रहे हैं ? जहाँ हम गरीबीको जड़से उखाड़ना चाहते हैं, वहाँ हम साकी-सुराहीको अपनाकर, इतना पैसा बहाकर इसके विरोधका कार्य नहीं कर रहे हैं ? ये हमारे मनोरञ्जन या उत्थानके स्थान हैं या घोर पतनकी जगहें हैं ? वहाँ कव्वालीको इतना रंग-रूप दिया गया, जिसको सुनकर वहाँ लज्जाको भी लज्जा आने लगी। हमारे धर्मप्रधान देशमें, जहाँ वीराङ्गनाएँ धर्मके लिये प्राणोंकी आहुतियाँ देती थीं, आज पश्चिमीय सभ्यतामें पड़कर विलासिताके लिये धर्मकी आहुतियाँ देनेको तत्पर हो रही हैं। मैं तो इसे कभी सभ्य सोसाइटी कहनेको तैयार नहीं हूँ। यह तो पाशविक जीवन है, जो हमारे जीवनको तथा हमारे बच्चोंको जीवन-जड़ोंको खोखला कर रहा है। मैं बड़े दुःखके साथ निवेदन करती हूँ कि हमारे देशके प्रतिनिधि इन पतनकारी क्लबोंकी ओर शीघ्र ध्यान दें। जनताका उत्थान ही देशका उत्थान है, आनेवाली पीढ़ियोंका उत्थान है। हमारा देश समृद्धिशाली और शक्तिशाली तभी हो सकेगा, जब ऐसी सोसाइटियोंका अस्तित्व नहीं रहेगा, जहाँ विलासिता, अनाचार और साकी-सुराहीके तराने हों। हमारी पञ्चवर्षीय योजना भी तभी सफल हो सकती है, अन्यथा नहीं।

—एक बहन



ऋण-परिशोध

कुछ ही समय पहलेकी यह सत्य घटना है। उस दिन हमारे घरमें दो विवाह थे। घर सगे-सम्बन्धियोंसे भरा था। मैं काममें खूब लगी इधर-उधर दौड़ रही थी। इतनेमें मेरी नजर महिलाओंसे खचाखच भरे कमरेमें एक पारसी बहिनपर पड़ी। वे जरा क्षोभके साथ परंतु शान्तिसे बैठी थीं।

चौदह-पंद्रह वर्ष पहले इस बहिनसे मिलना हुआ था, अतः मैं इनको लगभग भूल गयी थी। नाम भी याद नहीं आया। मैंने

उनको सब लोगोंके बीचसे थोड़ा अलग बुलाकर कुछ रुखाईसे पूछा—'क्यों बहिन ! क्या काम है ? आप बहुत वर्षों बाद आयीं; परंतु आज तो मैं बहुत काममें फँसी हूँ ।' वह बहिन उत्तर देनेके बदले अचानक मेरे पैरोंपर गिर पड़ी । मुझे बड़ा अचरज हुआ और मैंने समझा कि इन बहिनको कुछ सहायताकी जरूरत होगी । इसी विचारमें उनको उठाकर मैं आश्चर्यसे उनकी ओर देखती रही । उन्होंने आँखोंमें आँसू भरकर अत्यन्त प्रेमके साथ मेरे सामने एक लिफाफा रख दिया । मैंने जल्दी-जल्दीमें लिफाफा खोलकर देखा तो उसमें ५००) रुपये थे । मैंने पूछा—'ये किस लिये हैं ?' उन्होंने आँखोंमें आँसू होनेपर भी मुसकराते हुए कहा—'आपने पंद्रह वर्ष पहले मेरे विवाहके लिये सहायता दी थी । उस विवाहके बाद मैं साधारणतया सुखी हूँ । हर महीने चार-पाँच रुपये बचा-बचाकर आज मैं पूरे इकट्ठे कर पायी हूँ । और आपको वापस दे रही हूँ ।' मेरी आँखें छलक उठीं । मैंने कहा—'बहिन ! रुपये वापस लेनेके लिये मैंने नहीं दिये थे । मुझे तो इनकी याद भी नहीं है । दिया हुआ दान वापस नहीं लिया जाता ।'

उन्होंने बड़ा ही सुन्दर हृदयस्पर्शी उत्तर दिया—'ये रुपये तो आपको रखने ही पड़ेंगे । इनसे आप मुझ-जैसी दुःखी और गरीब बहिनोंकी मदद कीजियेगा ।'

अहा ! गरीब होनेपर भी कितना अमीर हृदय ! कितनी उदारता !

—सुमित्रा कमानी



प्रार्थनाका महत्त्व

तीन वर्ष पहलेकी हमारे जीवनकी एक घटना है। मैं लगभग चार-पाँच वर्षोंसे दमारोगसे पीड़ित हूँ, जिसके कारण मुझसे शारीरिक परिश्रम नहीं हो सकता। उस दिन मैं अकस्मात् अपने घरपर स्नान करते समय पत्थरपर गिर पड़ा जो पानीके नलके नीचे रक्खा था। मैं उठ न सका और बहुत जोरोंसे दर्द शुरू हो गया। किसी प्रकार टाँगकर एक कमरेमें खाटपर डाल दिया गया। पैरोंको जरा-सा हिलाने-डुलानेमें भी असह्य दर्द होता था। यों ही एक तरह पड़ा रहा। पाँच दिनों बाद कुछ दर्द कम होनेपर बायें चतड़की हड्डीका एक्सरे कराया गया। मालूम पड़ा कि हड्डी टूट गयी है। डाक्टरोंने कमरसे नीचेतक समूचे बायें पैरमें प्लास्तर-पट्टी बाँध देनेकी राय दी और कम-से-कम तीन महीने एक ही अवस्थामें पड़े रहनेका आदेश दिया। कुछ लोगोंने राय दी कि पट्टी यहाँ न बँधवाकर पटनेमें ज्यादा अनुभवी डाक्टरसे बँधवाना ठीक होगा। मैं इन सब बातोंको सुनकर बहुत घबरा उठा; क्योंकि न तो पटने जानेका उस हालतमें अवकाश था और न प्रबन्ध ही हो सकता था।

अतः मैं परिस्थितिपर रो उठा और अन्तःकरणसे उनकी कृपाके लिये करुण पुकार निकल पड़ी। मैं बार-बार भगवान्‌से कातर प्रार्थना करने लगा और तत्क्षण हृदयमें दृढ़ संकल्प उठा कि 'घबराओ मत, ठीक हो जाओगे।'

मैं उसी अवस्थामें बिना किसी दवा या उपचारके खाटपर पड़ा रहा; क्योंकि और दर्द तो वैसे कम हो गया था, परंतु जरा-सा पैर हिल-डुल जानेसे असह्य पीड़ा होती थी।

लगभग आठ दिनोंमें हिल-डुल करनेपर भी दर्द नहीं होने लगा, होता भी तो बहुत ही कम। दूसरे सप्ताहमें मैं उठ खड़ा हो गया, हड्डी स्वतः जुड़ गयी, दर्द भी जाता रहा और आजतक किसी तरहकी शिकायत उस हड्डीमें नहीं हुई।

ईश्वरकी बहुत लम्बी बाँह है। जिस चीजको डाक्टर उपचार करनेपर तीन महीनेमें भी अच्छे होनेकी गारंटी नहीं दे सकता, उसीको उनकी कृपा क्षणभरमें गारंटी दे देती है।

कौन कहता है कि प्रार्थनाका फल नहीं होता? कौन कहता है कि पुकार सुनी नहीं जाती? कमी है तो हममें, आपमें है, हमारे विश्वासमें है, उन परमात्मामें नहीं है। प्रार्थना तथा पुकार ऐसे समयमें हो जो उपयुक्त हो, विश्वासपूर्ण हो, शुद्ध चित्तसे हो और सच्चे अन्तःकरणसे हो, जब चारों ओरसे मनुष्य घिर जाय, उसका धैर्य टूट जाय, वह सहायतासे रहित हो जाय और साथ-साथ अटल विश्वास तथा श्रद्धा-भक्ति हृदयमें भरी हो। —हरिहरप्रसाद लोहानी



सद्‌व्यवहारसे प्रेम

यह घटना पाँच महीने पहलेकी है । हमारे घरके पास ही एक दुकानदार रहते हैं । हम भी किरायेदार हैं और वे भी । उनकी आदतोंसे हम लाचार थे । माताजीमें और दूकानदारकी पत्नीमें अच्छा व्यवहार नहीं था, सदा अनबन चलती थी ।

उन दूकानदारका लड़का बीमार था, दो-चार दिनके बाद वह ठीक हुआ । किंतु कमजोरी बहुत थी । वह लड़का दूकानमें गया और थोड़ी देरके बाद १६ सीढ़ी पारकर घर आया । पर कमजोरीके कारण अपनेको सँभाल नहीं सका, बेहोश हो गया, सबको शङ्का हो गयी कि अब वह बचेगा नहीं । माताजी यह सुनते ही भागीं एवं बच्चेको गोदमें लेकर उसके मुँह और आँखोंपर पानीके छींटे दिये और पंखा झला । बच्चा दो घंटेमें पूर्ण स्वस्थ हो गया । दूकानदारकी पत्नी कृतज्ञतासे बोली—'माताजी ! अगर आप न होतीं तो लड़का इस संसारसे चला जाता ।'

दशहरेकी छुट्टियोंमें जब हम घर आये तो माताजीसे पूछा कि 'दूकानदारकी पत्नी आपसे अच्छी तरह बोलती है या नहीं ?' माताजीने पूरी घटना कह सुनायी और कहा—उसका मेरे प्रति और मेरा उसके प्रति कोई द्वेषभाव नहीं था । वह मेरी पड़ोसिन है । बच्चेको मैंने सँभाला, इसमें क्या बात है । बच्चेसे दुश्मनी थोड़े ही थी । यह तो मित्रका कर्तव्य है ।

मैंने मनमें विचार किया—'धन्य माताजी आपकी सहृदयताको एवं दयालुताको ।'

मैंने भी यह पाठ सीख लिया कि कोई दुश्मन भी क्यों न हो, विपत्तिमें उसका अवश्य साथ देना चाहिये । —सरोजमोहन पलाधी



श्रद्धाका फल

मैंने एक बार किसी साहूकारसे दो सौ रुपये उधार लिये। नियत समयसे तीन मास ऊपर हो गये। परंतु मैं उन्हें लौटा नहीं पाया। साहूकारका आदमी प्रति सप्ताह किवाड़ खटखटाता और बुरा-भला कहकर चला जाता।

एक दिन साहूकार स्वयं मेरे द्वारपर आ धमका और बहुत बुरी तरहसे पेश आया। जाते समय कह गया—'संध्यातक यदि रुपये न दिये तो मुझ-सा बुरा तुम्हें न मिलेगा।'

मेरे पास रुपये थे नहीं, मैं बड़ी चिन्तामें पड़ा। मुझे सेठकी धमकी बार-बार याद आने लगी। इतनेमें मेरी दृष्टि चौकी पर रक्खी हुई माता लक्ष्मीकी चित्र प्रतिमापर पड़ी। मेरी पत्नी इनकी सदा पूजा किया करती थी। मैं माताके चरणोंपर सिर धरकर उपाय सोचने लगा। मैंने कहा—'माता ! तू ही बता, मैं क्या करूँ ! कहाँ जाऊँ ! आज तेरे होने-न-होनेकी तथा मेरी सचाई और झुठाईकी परीक्षा है।' मेरी आँख कब लग गयी, मैं कह नहीं सकता।

सोये-सोये ही मुझे किसीने छू दिया कि मेरे मुँहसे चौंककर
साहूकारजी' निकल पड़ा । परंतु ये साहूकार नहीं, मेरे मित्र गणेश-
ासजी थे । उन्होंने मुझे पूछा—'अरे भाई ! ये भीगी-भीगी आँखें
ौर अचानक मेरे छूते ही 'साहूकारजी' का उच्चारण—यह क्या
ात है ?' इनके पूछनेपर मैंने सारी कहानी कह सुनायी । सुनते ही
णेशजीने जोरसे एक कहकहा लगाया । मुझे बहुत बुरा लगा कि मैं
तना दुखी हूँ और ये मुझे देख खुश हो रहे हैं । इन्होंने कहा—
भाई ! कमाल है । आज ही साहूकारने तुम्हें धमकी दी, अपनी
त्नीकी मृत्युके बाद आज ही तुमने लक्ष्मी माताके चरणोंमें श्रद्धा-
र्वक सिर रखा और आज ही मैं तुम्हारा कर्ज चुकाने आ गया । बस,
ही समझो, माता लक्ष्मीका तुम्हें आशीर्वाद मिल गया ।'

मैं हैरान हुआ कि यह कर्ज कैसा । तब इन्होंने बताया कि
ंने अपनी बेटीकी शादीके समय तुम्हारी स्वर्गीया पत्नीसे रुपये लिये
। तुम्हें पता नहीं था । यद्यपि उसके मरनेकी खबर पाकर मेरे
नमें कपट आ गया था, तो भी मुझे ऐसा लगता है—लक्ष्मी माता-
ी ओर तुम्हारी श्रद्धा-भक्ति ही मुझे यहाँ खींच लायी है । गिनती
र लो, पूरे सवा तीन सौ हैं ।'

मैं गद्गद हो गया । मैंने फिर माताके चरणोंमें नमस्कार किया ।
ता ! मैंने कितने दिनों बाद तुझे श्रद्धा अर्पण की, परंतु तूने तो हाथों-
थ उसका महान् फल भी दे दिया ।

जय हो लक्ष्मी मैयाकी ! —सुतीक्ष्णानन्द



ऋण-मुक्ति

पिताजीकी मृत्युके होनेसे बचपनमें ही घरका भार बेचारे रावतमल बाबूपर आ पड़ा। ये अपने पिताके एकमात्र पुत्र थे। घरकी हालत भी अच्छी नहीं थी। व्यापार करके अपने दो त... एवं एक विधवा लड़कीका पालन-पोषण करते थे। इनको कार्यव... 'हजारीमल बाबू' के पितासे कुछ कर्ज लेना पड़ा। विशेष इच्छा होनेप... भी ये कर्ज चुकानेमें असमर्थ रहे। हजारीमल बाबूके पिताजी वृद्धा... वस्थाके कारण खटियापर ही लेटे रहते थे। बीमारी भी बढ़ रही थी। समाजके वृद्ध एवं अपने हितैषी जानकर रावतमल बाबू प्रा... हजारीमल बाबूके पिताकी सेवामें लगे रहते थे। इसलिये वे रावतमल... जीपर विशेष प्रसन्न रहते थे।

रावतमलजी कर्ज नहीं चुका सके। हजारीमलजीके वृद्ध पिताने यह सोचकर कि मेरी मृत्युके बाद कहीं मेरा बेटा हजारीमल नालिश... डिग्री, कुर्की करके रावतमलको तंग न करे, अपने हाथोंसे रावतमलके खातेको चुकता करके उठा दिया।

दुनियामें आदमीकी दशा पलटती रहती है । रावतमल बाबू ईमानदारीके साथ अपने रोजगारमें लगे रहे । धीरे-धीरे उन्होंने अच्छा पैसा कमा लिया । उनका सिद्धान्त था कि 'हम किसीका एक पैसा न लें; हमारा पैसा किसीके पास रह जाय तो हर्ज नहीं ।' उन्होंने जान-बूझकर कभी किसीका पैसा नहीं लिया ।

रावतमलजीने सोचा—हजारीमलजीके पिताका कर्ज तो मेरे सिरपर है, उनके ऋणसे भी मुझे मुक्त होना चाहिये । उन्होंने उन रुपयोंका चक्रवृद्धि व्याज जोड़ा तो कुल प्रायः तीन हजार रुपये हुए । पिताके धनका हक पुत्रको होता है । इसलिये हजारीमलजीसे उन्होंने रुपये लेनेके लिये कहा ।

त्यागमें शक्ति होती है । यद्यपि हजारीमलजी बहुत उदार नहीं थे, फर भी रावतमलजीकी उदारताने उनका मन पलट दिया । 'पिताजी ाता चुकता कर गये हैं । मुझे इन रुपयोंको लेनेका हक नहीं है । अतः मैं हीं लूंगा । आप इन रुपयोंको समाज एवं गरीबोंकी सेवामें लगा दीजिये ।' ह कहकर हजारीमलजीने रुपये नहीं लिये ।

श्रीरावतमलजीने उन रुपयोंको राजशाही मारवाड़ी संघके सुपुर्द र दिया । संघकी ओरसे एक दातव्य होमियोपैथिक औषधालय ोल दिया गया, जिसकी देख-रेखका भार संघके मन्त्री श्रीगोस्वामी ेन्द्र-चैतन्यभारतीजीने लिया ।

सं० २००४ में रावतमल बाबूका स्वर्गवास हो गया था ।

—चौथीलाल शर्मा



एक फौजी अफसरकी सज्जनता

मुझे अपने एक रिश्तेदारके यहाँ शादीमें जाना अत्यन्त आवश्य था। मेरे साथ दो मित्र और थे। रेलका तीसरे दर्जेका टिकट लेक हमलोग स्थान पानेके लिये प्लेटफार्मपर गाड़ीके एक सिरेसे दूस सिरेतक चक्कर काट रहे थे। चार-छः बार चक्कर लगानेके बाद भी हमलोगोंको कहीं खड़े होनेतकका स्थान नहीं मिल सका। हम-जै ही और भी बहुत-से मुसाफिर घूम रहे थे। गाड़ी मुसाफिरोंसे खचाख भरी थी।

हमलोग जब बड़ी परेशानीसे चक्कर काट रहे थे, उस समय मिलिटरीके एक रिजर्व कम्पार्टमेंटके दरवाजेपर खड़े एक सज्जन हमारी ओर बराबर देख रहे थे और हमारी आँखें भी आते-जाते बरबस ही उनकी ओर खिंच जाती थीं। हमारी परेशानीको वे देख नहीं सके और आखिर उन्होंने हमें पूछ ही लिया—'आपलोग कहाँ जा रहे हैं?' मैंने विनम्रतासे कहा—'पासके तीसरे स्टेशनतक जाना है। गाड़ीमें पैर रखनेकी भी जगह नहीं है।'

हमलोग बात कर ही रहे थे कि इंजिनने सीटी दी और गार्डने हरी झंडी दिखा दी। हमलोग भौंचक्केसे इधर-उधर देखने लगे।

इतनेमें ही उक्त सज्जनने हमें अपने डिब्बेमें बुला लिया। डिब्बेमें उनके सिवा और कोई नहीं था। फर्स्ट क्लासका डिब्बा, आरामदेह सीटें। हमें तो स्वप्न-जैसा लग रहा था। गाड़ीके चलनेके साथ ही बातचीतका सिलसिला भी शुरू हुआ। उनके परिचयसे मालूम हुआ कि वे राजस्थानके राजपूत वंशके ऊँची खानदानके पुरुष हैं। उनके और भी चार भाई हैं। वे भी अन्य विभागोंमें ऊँचे-ऊँचे पदोंपर हैं और वे स्वतः भी मिलिटरीमें 'मेजर' के पदपर हैं।

मैंने अपने जीवनमें मिलिटरी-जैसे भयावह महकमेंके इतने बड़े अधिकारीकी सज्जनताका नमूना पहली ही बार देखा। मैं जीवनभर उस महापुरुषकी सज्जनताको कभी नहीं भूल सकूँगा।

—देवाशंकर मांगरोले



आदर्श मित्र

हनुमानबक्सजीका बड़ा कारोबार था, उनके एक मित्र विलासराय भी व्यापार करते थे। उनका भी व्यापार ठीक चलता था। दोनोंमें बड़ा प्रेम था। समय बदलता रहता है; स्थिति परिवर्तनशील होती है। विलासरायजीका व्यापार ढीला चलने लगा। दो-तीन व्याह-शादीके बड़े खर्चके प्रसंग आ गये। इज्जतके अनुसार खर्च करना पड़ा। ऋण हो गया। एक निकटस्थ सम्बन्धी थे। उनके लगभग पैंतालीस हजार रुपये इनमें बाकी थे। वे सम्पन्न थे। और यह भी जानते थे कि इनके पास रुपये इस समय नहीं हैं। होते तो ये तुरंत दे देते। बड़े ईमानदार हैं। परंतु किसी कारणवश वे इनपर बहुत नाराज थे और द्वेषवश इन्हें तकलीफ देना चाहते थे। उन्होंने नालिश करके किसी प्रकार गुपचुप डिक्री करवा ली। विलासरायजीको नालिश-डिक्रीका पता ही नहीं लगने दिया। डिक्री जारी करवा ली और रुपये न मिलनेपर गिरफ्तारीका वारंट भी निकलवा दिया। उस दिन किसी एक विवाहमें विलासरायजी गये हुए थे। संध्याके समय जब कि सैकड़ों पुरुष बारातमें आये हुए हों उन सबके बीचमें उन्हें गिरफ्तार करनेकी योजना थी। सारी व्यवस्था कर ली गयी। हनुमानबक्सजीको दुपहरके बाद इसका पता लगा। उनको बड़ी चिन्ता हुई। डिक्री कितने रुपये हैं, इसका उन्होंने पता लगाया और रुपये कोर्टमें जमा करवाकर रसीद तथा वारंटकी वापिसीका आदेश लेकर ठीक उस समय विलासरायजीके उस सम्बन्धीके घर पहुँचे, जिस समय वे वारंटके साथ पुलिसको लेकर बारातके स्थानपर जा रहे थे। इन्होंने

रसीद दिखायी और वारंट वापिसीका आदेश दिखलाया । उक्त सम्बन्धी तो यह सब देख-सुनकर भौंचक्का-सा रह गया । हनुमान-बक्सजीने नम्रताके साथ कहा—'भाई ! तुम इतने निकट-सम्बन्धी तथा घरमें सुसम्पन्न होकर भी विलासराय-सरीखे ईमानदार सज्जनको बिना उसे जनाये धोखेसे डिक्री करवाकर आज पकड़वाने जा रहे थे, तुम्हारा यह काम हम सभीके लिये लज्जाकी चीज है; ऐसा नहीं करना चाहिये ।' उसने संकोचमें पड़कर सिर नीचा कर लिया ।

विलासरायजीको हनुमानबक्सजीने कुछ नहीं कहा । वे भी बारातमें गये । सब काम ठीक हो गया । विलासरायजीको कुछ पता ही नहीं कि क्या हुआ है । डिक्री भरपाई करके उक्त सम्बन्धीने रजिस्ट्रीद्वारा विलासरायजीके पास भेजी, तब उन्हें पता लगा, पर यह नहीं मालूम हुआ रुपये उनकी ओरसे किसने जमा करवाये । वे उक्त सम्बन्धीसे मिले, तब उसने बतलाया कि मैं तो नीचतावश आपको बारातके समय हजारों आदमियोंके बीच पकड़वाकर बेइज्जत करना चाहता था । परंतु हनुमानबक्सजीने ऐसा नहीं होने दिया । पता लगते ही रुपये पूरे जमा कराके रसीद ला दी और वारंट खारिज करवा दिया । लगभग बावन हजार रुपये थे ।

उस समय विलासरायजीको कितनी प्रसन्नता हुई और मित्र हनुमानबक्सजीके प्रति उनका हृदय सदाके लिये कितना कैसा कृतज्ञ हो गया, इसका पूरा अनुमान भी हम नहीं लगा सकते । धन्य मैत्री !

—व्रजमोहन गुप्त

भारतका संस्कार-दर्शन

विदेशसे लौटे हुए और अस्पतालमें सर्जनके पदपर काम करने मेरे एक पड़ोसी डाक्टरने अपनी विदेशयात्राका एक प्रसंग सुनाया। यहाँ उन्हींके शब्दोंमें उद्धृत कर रहा हूँ—

मैं इंग्लैंड पहुँचा, उस समय 'कहाँ रहूँगा' यह निश्चय नहीं था सभी छात्रालयोंमें जगह भर चुकी थी। सौभाग्यवश मुझको वहाँके ए संस्कारी कुटुम्बमें 'पेइंग गेस्ट' के रूपमें स्थान मिला। थोड़े ही दिनों मैं उस कुटुम्बमें दूधमें चीनीकी तरह घुल-मिल गया।

छुट्टियोंमें एक दिन मैं उक्त कुटुम्बके मुखियाके साथ प्रातःका सूर्यस्नान करता हुआ गप्पें मार रहा था। बातों-ही-बातोंमें उन्होंने कहा—"आपसे पहले एक मद्रासी भाई हमारे कुटुम्बमें 'पेइंग गेस्ट' के रूपमें रहे थे। उन्होंने हमें बहुत तरहसे परेशान किया। उन्हें पान खानेकी कुटेव थी। 'कुटेव' इसलिये कि पान खाकर घरों की सारी दीवालोंको रँग डालते। घरके लोगोंके साथ अवाञ्छनीय वर्त्ताव करते। घरकी व्यवस्थामें साथ देनेके बदले उल्टी घरमें अव्यवस्था उत्पन्न कर देते। बातचीत-जितनी भी सभ्यता नहीं दिखा लाते। इसलिये हारकर लाचारीसे हमें उनको अलग करना पड़ा। तबसे यह गाँठ बाँध ली थी कि किसी भी भारतीयको 'पेइंग गेस्ट' के रूपमें नहीं रखना। परंतु आपके विवेकपूर्ण तथा सभ्यतापूर्ण वर्ताव तथा वाणीसे आपको 'पेइंग गेस्ट' के रूपमें रखनेके लिये मैं ललचा उठा और सचमुच आप इस कुटुम्बके एक महत्त्वपूर्ण सदस्य बन गये हैं।"

मैंने उनकी इस भावनाके लिये आभार माना और मन

निश्चय किया कि उनके भारतसम्बन्धी ऐसे पूर्वाग्रहको अपने संस्कारभरे बर्तावसे मुझे दूर कर देना है । तभीसे मैं अपने वर्तावके सम्बन्धमें विशेष सावधान हो गया । मैंने उनके प्रत्येक कार्यमें सहयोग देना आरम्भ किया । मेरे कमरेकी सफाईका काम मैंने स्वयं अपने जिम्मे ले लिया । उन कुटुम्बके लोगोंके साथ मैं घरकी सफाई-सुघराईमें तथा वृक्षोंमें जल देनेमें सहृदयतासे सहयोग देने लगा । यों मैं उस कुटुम्बमें ओतप्रोत हो गया । कुटुम्बके बालक भी मेरे साथ खूब हिल-मिल गये ।

अन्तमें मेरा अभ्यास समाप्त होनेपर मैं इंग्लैंडसे चलनेको तैयार हुआ । उस कुटुम्बसे विछुड़ते समय मुझे ऐसा लगा, मानो मैं अपने ही कुटुम्बसे बिछुड़ रहा हूँ । किंतु 'मेरी' और 'विलियम' तो मुझे पकड़कर रोने लगे । गद्गद स्वरसे मैंने उस कुटुम्बके मुखियासे आज्ञा माँगी । आँसू छलकती हुई आँखोंसे उन्होंने मुझसे कहा––

'भारतमें मैं आपकी सफलता चाहता हूँ, आपने प्रेमभरे वर्तावसे अपने भारतीयोंके प्रति मेरे दुर्भावको दूर कर दिया है। अबसे मैं किसीभी भारतीय- को अपने घरमें स्थान देते नहीं हिचकूँगा ।'

मैंने कहा––'मैं आपका तथा आपके सारे कुटुम्बका आभार मानता हूँ । मैंने तो कुछ किया ही नहीं । केवल अपने देशके संस्कारके अनुसार आचरणमात्र किया है । इससे आपका दुर्भाव दूर हो गया––यह मेरे लिये आनन्द और सौभाग्यकी बात है ।' और अश्रुसिक्त नेत्रोंसे मैंने उस कुटुम्बसे विदा ली ।

––जसवंत सायर

मूल्यवान् आतिथ्य

ऐसा कौन व्यक्ति है जिसे जीवनमें कभी आतिथ्य न उपलब्ध हु हो। पर सभी आतिथ्य मूल्यवान् नहीं होते। वास्तवमें मूल्यवान् आति वही है जिसमें आतिथ्यकर्ताके हृदयका शुद्ध प्रेम सम्मिलित हो। ऐ आतिथ्य कभी-कभी भाग्यसे ही प्राप्त होता है।

कई वर्ष पूर्वकी बात है। हम चार आदमी नैमिषके लि चले। यद्यपि मेरे यहांसे नैमिष जानेके लिये रेल आदि अच्छा प्रबन्ध है, पर हमलोगोंने यह यात्रा साइकिलसे ही करनेक निश्चय किया। हमारे यहांसे नैमिष लगभग ४५ मील है। हम लोग मध्याह्नका भोजन करके और संध्याका भोजन साथमें बांधकर

लगभग दो बजे घरसे चल पड़े। विचार था कि आज रात्रिमें मिश्रितमें विश्राम करके प्रातःकाल नैमिष पहुँच जायेंगे। पर संयोगवश जब मिश्रित लगभग ५-६ मील रह गया, तभी सूर्यास्तका समय हो गया। अब हमलोगोंमेंसे एक आदमीका विचार हुआ कि यहीं ठहरा जाय और एक दूसरे आदमीका निश्चय था कि आज मिश्रित चलकर ही विश्राम करेंगे। दोनोंके मतभेदने धीरे-धीरे कलहका रूप लेना आरम्भ कर दिया। विवश होकर मुझे भी उसमें भाग लेना पड़ा। मैंने उन भाईसे निवेदन किया, जो मिश्रित पहुँचकर ही विश्राम करनेका अधिक बल दे रहे थे कि 'आप अपनी बात छोड़ दें। असमय हो चुका है। एक साथीका हृदय भयभीत है, वह रातमें चलनेमें अपनी असमर्थता प्रकट कर रहा है, आपको क्या अधिकार है कि उसे रात्रिमें चलनेके लिये विवश करें। यदि कोई दुर्घटना हो जाय तो उसका उत्तरदायित्व आपके ऊपर आयगा। अतएव आप अपना आग्रह छोड़ दें और एक साथीके नाते उसका साथ देनेमें अपना अपमान न समझें।' थोड़ी बहसके बाद वे राजी हो गये।

हमलोग रातभर ठहरनेके विचारसे निकटवर्ती गाँवमें गये। देखा—एक दरवाजेपर प्रकाश जल रहा है, दस-पाँच आदमी बैठे हुए हैं। गृहस्थ भी सम्पन्न व्यक्ति प्रतीत हुए, द्वारपर स्थान पर्याप्त था। हमलोगोंने उनसे वहाँ ठहरनेकी प्रार्थना की। उन्होंने निकटवर्ती दूसरे गाँवकी ओर संकेत कर दिया कि ठहरनेके लिये आप वहाँ जायँ। यद्यपि उनका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा।

पर यह सोचकर कि यह तो अपनी-अपनी प्रवृत्ति है, ये नहीं स्थान देना चाहते; संतोष किया और वहाँसे चल पड़े । उन आदमियोंके बीचमें बैठा हुआ एक आदमी भी हमलोगोंके साथ उठकर चला आया । जब वह उन महाशयके द्वारसे आगे आ गया तब उसने कहा—भाई साहब ! हमारे यहाँ ठहरनेमें आपको कष्ट होगा, पर यदि आप कष्ट सहन करके ठहरना चाहें तो चलें । मैंने कहा—हम अवश्य आपहीके घरपर ठहरेंगे । चाहे आपके यहाँ हमें रातमें भीगना ही क्यों न पड़े । वर्षाकाल था ।

हमलोगोंने जाकर उसका घर देखा । साधारण गृहस्थ था । दरवाजेपर एक छप्पर पड़ा हुआ था । हमलोगोंको ठहरनेके लिये उसने वही स्थान दिया ।

जब हमलोग यथास्थान बैठ चुके तब उसने भोजन बनानेके लिये आग्रह किया; क्योंकि वह जातिका गड़रिया था और हमलोग ब्राह्मण । पर हमलोगोंके पास भोजन-सामग्री बँधी हुई थी अतएव हमलोगोंने इन्कार कर दिया । उसने बहुत आग्रह किया कि आप यह भोजन कलके लिये रख लें, आज हमारा ही अन्न खायें, पर हमलोगोंने यह नहीं स्वीकार किया, क्योंकि भोजन-सामग्री पर्याप्त थी, जिसे हम दो दिनमें भी नहीं समाप्त कर सकते थे । अन्तमें बहुत अनुनय करनेपर उसने भोजन बनवानेका आग्रह छोड़ा, पर एक लोटा दूध उसने फिर भी दिया ही और आग्रह किया कि इसे आप अवश्य स्वीकार करें । उसके घरमें इतना ही दूध होता था ।

—त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी 'चंद्रेश'



दयाकी देवी

सन् १९५२ में मेरे हाथका फ्रेक्चर हो जानेसे मैं बम्बईके एक अस्पतालमें भरती हुआ था। वहाँ बना हुआ एक प्रसङ्ग लिख रहा हूँ--

मेरे पलंगसे चौथे या पाँचवें पलंगपर एक कृशकाय, फीके और निस्तेज चेहरेवाला युवक था। उसे देखनेपर ऐसा लगता था कि वह बीमारीसे पहले सुदृढ़ और सुन्दर होगा। हमारे वार्डकी जिम्मेवारी जिसके ऊपर थी वह सिस्टर (नर्स--परिचारिका) वार्डके दूसरे रोगियोंकी अपेक्षा उस युवकका विशेष ध्यान रखती, ऐसा लगता था। कभी-कभी तो उसकी 'ड्यूटी' पूरी होनेके बाद भी वह आती और युवकके पास बैठ जाती।

सिस्टरके इस बर्तावसे रोगियोंके मनमें ईर्ष्याकी आग सुलग उठी और उसने दोनोंके सम्बन्धको अवाञ्छित रूप दे दिया।

यह बात प्रधान डाक्टरतक पहुँची। डाक्टर एक दिन हमारे वार्डमें आये और बोले--'अभी कुछ दिनोंसे आपलोगोंके मनमें जो 'सिस्टरके प्रति असंतोष हो गया है, उसका मुझको पता लगा है और आपलोगोंने उनके सम्बन्धको जो अवाञ्छित स्वरूप दे डाला है, उससे मुझको बहुत दुःख पहुँचा है। हमारा मानस ही आज इतना विकृत हो गया है कि किसी भी स्त्री-पुरुषके पवित्र सम्बन्धको भी हम उल्टे चश्मेसे देखने लगते हैं। 'सिस्टर' तो दयाकी देवी है। 'सिस्टर' की ममता उस युवकके प्रति क्यों अधिक

रहती है, उसकी सारी विगत सुननेपर तो आपलोगोंने उनके सम्वन्धको जो वुरा रूप दे दिया है, उसके लिये अवश्य पश्चात्ताप होगा।'

हम सवने डाक्टरकी विगत सुनानेके पहले ही अपनी 'दृष्टि' के लिये क्षमा माँगी और आगे वात चलानेके लिये प्रार्थना की।

डाक्टरने कहा—'इस युवकको बचपनसे ही खूब सिगरेट-बीड़ी पीनेकी आदत थी। इस व्यसनका परिणाम भयंकर दमाकी वीमारीके रूपमें परिणत हो गया। युवकके कुटुम्वमें उसके सिवा और कोई नहीं है। दमाकी बीमारीके कारण उसे नौकरीसे हाथ धोना पड़ा। जव रोग वहुत वढ़ गया, तव उसे इस अस्पतालमें 'फ्री पेशंट' निःशुल्क रोगीके रूपमें भरती किया गया। उसकी आर्थिक तथा कौटुम्विक परिस्थिति देखकर 'सिस्टर' को उसके प्रति ममता उत्पन्न हो गयी और उसने युवककी सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली। युवक निःशुल्क रोगी होनेके कारण उसे अस्पतालके खर्चकी तो चिन्ता नहीं थी, परंतु उसके व्यक्तिगत खर्चकी जिम्मे-वारी भी 'सिस्टर' ने ले ली।

एक दिन दमाका वहुत भारी दौरा आ गया। उस समय युवकको तीन दिनोंतक 'गेस' पर रक्खा गया। इन तीन दिनोंमें विना रात-दिन देखे—खाने-पीनेकी सुधि भूलकर 'सिस्टर' युवककी सार-सँभालमें ही रही।

युवकके जीवनकी रक्षा होना इस 'सिस्टर' की ममता और अथाह परिश्रमका ही परिणाम है। एक दिन युवक और सिस्टर

बैठे थे। युवककी आँखोंमें आँसू आ गये। 'सिस्टर'ने पूछा—'भाई! रो क्यों रहे हो?'

युवकने कहा—'बहिन! मुझे बहुत बार आपका विचार आता है, न तो कभी आँखोंकी पहचान थी, न आप मेरे सगे-सम्बन्धीमें ही कोई थीं; इतनेपर भी आपने मेरे प्रति जो माया-ममता दिखलायी, उसका ऋण मैं किस जन्ममें चुका सकूँगा?'

'सिस्टर' बोली—'भाई! यों मनमें संकोच क्यों करते हो? क्या मैंने बदला पानेकी आशासे आपकी चाकरी की है! इसपर भी आपको ऋण चुकाना ही हो तो एक काम करके चुका सकते हो। मैं मागूँगी सो दोगे?'

'बहिन! मेरे पास देने योग्य क्या है?'

'आप आजसे प्रतिज्ञा कर लें कि अबसे आगे मैं कभी सिगरेट-बीड़ीको हाथसे भी नहीं छूऊँगा। बोलो—देते हो वचन?'

युवक गद्‌गद हो गया और—'बहिन!' शब्दके सिवा उसके मुखसे एक भी शब्द और नहीं बोला गया।

इस प्रकार 'सिस्टर'ने युवकका जीवन तो बचाया ही, साथ-ही-साथ उसे व्यसनकी नागपाशसे भी छुटकारा दिलाया।

सारी बातें सुनकर, और उन दोनोंके पवित्र सम्बन्धके बाबत हम-लोगोंने गंदी कल्पना की, इससे हमें बड़ी शरम आयी और एक अनजान युवकके लिये इतना त्याग करनेवाली 'दयाकी देवी' के प्रति हम सब लोग मन-ही-मन प्रणत हो गये। —मधुकान्त भट्ट

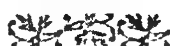


एक दिन मेरे मनमें इच्छा हुई कि मैं हरिद्वार जाकर पता लगाऊँ। पञ्चायत-परिषद्के सम्मेलनमें हजारीबाग गया और वहाँसे मैं ऋषिकेश चला आया।

दिनाङ्क २६। ६। ५८ ई० को गीताभवन ऋषिकेशमें श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके एवं अन्य महात्माओंके भाषण सुने। शामको ८, ९ बजे गीता-भवनमें भाई पोद्दारजीका भाषण सुना। श्रीदशरथजीद्वारा श्रवणकुमार-वध एवं रामनामका माहात्म्य भी सुना। राम-नामका माहात्म्य सुनकर मैंने यह संकल्प किया--मैं पूर्णमासीतक श्रीरामनामका जप करूँगा। यदि रामनामकी इतनी बड़ी महिमा होगी तो मेरे लड़केका पता इसी बीचमें लग जायगा और यदि पूर्णमासीतक मेरे लड़केका कोई पता नहीं लगेगा तो मैं नास्तिक हो जाऊँगा। ऐसा मनमें ठानकर मैंने गङ्गातटपर डेढ़ बजे राततक 'राम-जानकी' का जप किया। सुबह मेरी इच्छा स्वर्गाश्रममें ...में जानेकी हुई। मैं जानेहीवाला था कि उसी समय मेरा ड़का। संन्यासी-वेषमें उधरसे ही जा रहा था। मैं उसे पहचान नहीं सका। कुछ दूर जाकर वह फिर लौट आया और मेरे पैरोंपर गिर पड़ा। मैंने जब उसे उठाया तो पहचान लिया।

राम-नामकी महिमाका प्रत्यक्ष प्रमाण मुझको मिल गया। मेरे दिलमें रामनामकी महिमाकी ज्योति जगमगा रही है और सदा जगमगाती रहेगी।

—टुपलाल गर्ग



तुरंत देह-परिवर्तन

(आँखोंदेखी सत्य घटना)

एक बारात मौजे केन्दुकीसे ग्राम निर्माणा (जि० मुजफ्फरनगर) रही थी। इस बारातमें एक लड़का शोभाराम उम्र लगभग २४ र्ष, कौम त्यागी ग्राम बेहेड़ी जि० मुजफ्फरनगर रेलवे स्टेशन हाना कलाँको अपना रथ हाँककर ले जा रहा था। वह रथसे रा, रथका पहिया उसकी गरदनपरसे उतरा। नाक-मुँहसे रक्त ने लगा। बेहोशीकी दशामें उसे रोहाना मिलके अस्पताल ले या गया। यहाँपर रातके ११ बजे मर गया। उसी स्थानपर उसका ह-संस्कार कर दिया गया।

उसी रातको ग्राम रसूलपुर (जाटान) में जि० मुजफ्फरनगर कि ग्राम बेहेड़ीसे चार मीलके फासलेपर है, एक जाटका बच्चा रककी बीमारीसे गुजर गया। बच्चेकी आयु लगभग एक वर्ष थी। चा सहसा रातके ४ बजे (मरनेके ३-४ घंटे पश्चात्) जी ा; किंतु उस बालकने इस समयके पश्चात् माँका दूध पीना छोड़ या।

चार बर्षके पश्चात्

उस लड़केकी माँ उसे लेकर अपने मैंके जा रही थी (ग्राम ईमें)। मार्गमें वह स्थान पड़ता था जहाँ कि उपर्युक्त घटना यकका रथके द्वारा मरना) घटी थी। वहाँसे दो रास्ते जाते

थे—एक ग्राम बेहेड़ीको और दूसरा ग्राम परईको। लड़केने कहा—'मैं यहाँ रथसे गिरा था, हमारे घरका रास्ता तो उधर (बेहेड़ी ग्रामकी ओर संकेत करके कहा) को है। मां बच्चेकी बातपर ध्यान न देते हुए उसका हाथ पकड़ ग्राम परईकी ओर चल दी।

मार्च १९५८

केन कोआपरेटिव सोसायटीके कामदार श्रीजगन्नाथप्रसाद (बेहेड़ीनिवासी) एक दिन ग्राम रसूलपुर जाटान गये। वहाँ जाटनीका लड़का, जिसकी आयु इस समय लगभग ५-६ वर्ष हो चुकी है, बच्चोंमें खेल रहा था। उसने पुकारा 'अरे ओ जगन्नाथ!' जगन्नाथने चौकन्ना होकर इधर-उधर देखा। कोई परिचित व्यक्ति दिखायी न पड़ा और वे चल पड़े।

लड़केने पुनः पुकारा—'जगन्नाथ! यहाँ सुन।' उसने जगन्नाथसे राम-राम करके कहा—'मुझे बेहेड़ी ले चल।' जगन्नाथने कहा—'तू किसका लड़का है?' उस लड़केने प्रारम्भसे अन्ततक अर्थात् रथसे गिरकर मरनेतककी घटना सुनायी। जगन्नाथने आश्चर्यचकित हो पूछा—'फिर तू यहाँ कैसे आया?' लड़केने कहा—'फिर गिरकर मरनेके बाद मुझे और कोई जगह न मिली। यह शरीर खाली देख इसमें आ गया।'

श्रीजगन्नाथने यह पूरी घटना बेहेड़ी जाकर ग्रामवालोंको सुनायी। लड़केके ताऊ, चाचा आदि सम्बन्धी गाँव रसूलपुर गये। लड़केने उन सबको पहचाना और नाम लेकर राम-राम किया।

लड़केके सम्बन्धियोंने उससे अनेक प्रश्न किये, जिनके उसने संतोषजनक उत्तर दिये।

उन ग्रामीणोंमेंसे एक व्यक्तिने (जो कि उसी रथमें सवार था और रथसे गिरनेके पचात् लड़केको रथमें लिटाया और सिर अपनी गोदमें रखे रहा था), पूछा—'मेरा नाम बतला।' लड़केने कहा—'नाम तो भूल गया; किंतु इतना याद है तुमने मुझे अपनी गोदमें लिटाये रक्खा था।'

वे उस लड़केको लेकर बेहेड़ी ग्राम चले। रोहाना मिल्स, स्टेशनपर आकर लड़केसे आगे-आगे चलनेको कहा गया। लड़का सीधा अपने घरपर पहुँचा। सबके यथोचित नाम लेकर राम-राम किया और यह भी जिद्द की कि मैं यहीं रहूँगा।

वह बच्चा आज भी जाटनीके घरकी रोटी नहीं खाता। उसके खानेका प्रबन्ध एक पड़ोसिन ब्राह्मणीके यहाँ है। उसने जीवित होनेके पश्चात् उस जाटनी (अपनी मौजूदा माँ) का दूध भी कभी नहीं पिया।*



* यह घटना मुझे एक मेरे विश्वसनीय मित्र चौ० काशीरामजी त्यागी बड़कलोनिवासी (बड़कलो ग्राम बेहेड़ी ग्रामसे ३,४ फर्लांग दूर है) ने सुनायी। आप (चौ० काशीरामजी त्यागी) एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। जिला कांग्रेस कमेटी, मुजफ्फरनगरके उपाध्यक्ष, भ्रष्टाचार-निवारक समितिके सदस्य और डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक मुजफ्फरनगरके डाइरेक्टर हैं। मेरे साथ उनका तर्क अकाल मृत्युपर चल रहा था। उसी वार्तालापके बीच उन्होंने मुझे उपर्युक्त घटना सुनायी।—रामस्वरूप शर्मा

सच्ची पुकारसे प्रभु-कृपा

बात पुरानी है । उन दिनों मैं प्राइमरी पाठशाला, बेरीनागमें चौथी जमातमें पढ़ता था । दस वर्षका मैं और वयोवृद्ध पिताजी, यही मेरा परिवार था । माँ, जब मैं दो मासका था, तभी चल बसीं थीं । न कोई भाई और न बहिन थी । मुझे याद है कि उन दिनों मैं भक्त प्रह्लाद, ध्रुव, द्रौपदी और गजेन्द्र आदिकी कथाएँ कविता-रूपमें गा-गाकर अपने वृद्ध पिताजीको सुनाया करता था । हृदय पवित्र था । राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोहादि विकारोंसे अनजान मुझे तब कल्पना भी नहीं थी । मैं कहता—'भगवान्, मैं दुनियामें अकेला हूँ; मेरा कोई नहीं है, तुम हो । मुझे बिसारना नहीं

भक्तोंके चरित्र गाते-सुनते मेरी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग जाती थी। पाठशाला जाना, घर आना, अपने पिताजीको कथाएँ सुनाना और भक्तोंकी महिमा गा-गाकर सो जाना—यही मेरी दिनचर्या थी।

एक दिन, जब मैं पाठशालामें था, मेरे एक चचेरे भाईने पाठशालामें आकर मुझसे कहा—'गुरुजीसे छुट्टी ले लो और जल्दी घर चलो। तुम्हारे पिताजीको खेतमें एक विषधरने काट लिया है। पर अब तबीयत ठीक है। घबराना नहीं।'

मेरे ऊपर मानो पहाड़ टूट पड़ा मैंने छुट्टी ली और चला। मेरा बालक हृदय किसी अज्ञात आशङ्कासे काँप उठा। मैं भलीभाँति जानता था कि जब सर्प काटता है, मौत निश्चित होती है और समझता था कि जिसकी मौत आती है, उसीको सर्प काटता है। मेरी अन्तरात्मा रो उठी और मैं फूट-फूटकर रोते हुए घर चला। भाईने बहुत समझाया कि चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है। पर मेरे पग घरकी ओर चलते ही न थे।

किसी प्रकार घर पहुँचा। पिताजीकी हालत देखते ही कराह उठा। उनका चेहरा नीला पड़ गया था, आँखें अंदरकी ओर धँस गयी थीं, सारे शरीरमें भयंकर सूजन थी। मैं डर गया और बिलखने लगा। पिताजीको होश था, पर बेचैनी थी। उन्होंने कहा—'बेटा! अब मैं क्षणोंका मेहमान हूँ, भगवान् तेरे सहायक हैं। रो मत।'

सायंकाल हुआ, सभी अपने-अपने घरोंकी ओर चल दिये। मेरे चचेरे भाईने कहा—'देख! इन्हें नींद न आने देना; सब सोने

लगें, जगा देना । मैं अभी भोजन करके आ जाऊँगा ।' और वे [illegible] चले गये । पिताजीके सामने अकेला मैं बैठा अपनी [illegible] निष्ठुरतापर कराह उठा—सामने भगवान् श्रीकृष्णका चित्र [illegible] था । मैंने कहा—'मेरे प्रभु !' और रो उठा । 'आप मेरे हैं, [illegible] माँ कब आयी और चल दी—इसका मुझे ज्ञानतक नहीं, न [illegible] साथी और न अपना । एक ये ही अस्थिपञ्जर बूढ़े पिताजी [illegible] भी आज मुझे छोड़कर जा रहे हैं । मैं अभागा इनकी सेवा [illegible] कर सका । प्रभो ! मेरे पिताजीको बचाओ, मेरी रक्षा करो । [illegible] आशुतोष भगवान् शंकरके सखा हैं । भगवान् शंकरका एक [illegible] सर्प मेरे पिताजीको काट गया है । प्रभो ! अपने सखातक मेरी [illegible] सिफारिश पहुँचा दो कि उनका सर्पराज अपने विषकी अग्नि [illegible] पिताजीके शरीरसे शान्तकर इन्हें स्वस्थ कर दे । प्रभो ! मेरी [illegible] सुनो ।' प्रार्थना करते-करते मेरा गला भर आया और मैं [illegible] बिलखकर रोने लगा । इतनेमें मैंने देखा कि एक भयंकर सर्प आ[illegible] मेरे पिताके हाथपर डंक मारकर अन्तर्धान हो गया है ।

मेरा रोना सुनकर पास-पड़ोससे सभी लोग आ गये और [illegible] चचेरे भाई भी तबतक पहुँच गये । उन्होंने देखा कि मेरे पिता[illegible] नींद आ गयी है । वे काँप उठे । उन्होंने कहा—'सर्वनाश हो [illegible] है, मुझे अपनी सुध न थी ।

भाईने काँपते हुए पिताजीको हिलाया । हमारे आनन्द[illegible] ठिकाना न रहा, जब वे ऐसे उठ बैठे जैसे एक गहरी निद्राके [illegible] कोई उठता है और बोले—'अब मैं ठीक हूँ । बेचैनी नहीं है [illegible]

तुमलोग सो जाओ ।' हम सभी एक-दूसरेके मुँहको देखने लगे । मैंने अपने प्रभुको प्रणाम किया और इस दिव्य चमत्कारका किसी को पता न लगा ।

वे दिन भी थे और आज भी हैं । आज मेरे परिवारमें वृद्धि हो गयी है । पिताजी अभी जीवित हैं और हमलोगोंकी देख-रेख करते हैं । आज भी मैं प्रार्थना करता रहूँ, प्रातः-सायं भजन गाता हूँ, पर उन दिनोंमें और आजमें आकाश-पातालका अन्तर है । आज हृदयमें काम है, क्रोधकी भयंकर अग्नि है और राग-द्वेषसे हृदयका कोना-कोना भर गया है । और न मालूम क्या-क्या है । आजकी मेरी प्रार्थना हृदयसे नहीं, पर केवल मुँहसे होती है । भगवान् अब मेरे अपने नहीं, प्रत्युत पराये हो गये हैं । मैं आज अपने बीवी-वच्चोंको ही अपना समझने लगा हूँ । ऐसी स्थितिमें भगवान् मेरी सुनें, यह मेरी केवल कोरी कल्पना है ।

मुझे निश्चय है और सोलहों आने निश्चय है कि प्रभुके कानों-तक वही पुकार पहुँच सकती है, जो सच्चे—निष्कपट हृदयसे, अन्तरात्मासे निकलती है और वह पहुँचती है अवश्य, भले ही हम उस पुकारको स्वार्थसे करें अथवा परमार्थबुद्धिसे । इससे हमारा ही सम्बन्ध है, भगवानका नहीं । वे सुनते हैं और सुनेंगे । बस, विश्वासी सुनानेवालोंकी आवश्यकता है ।

अब मेरे कर्म ऐसे नहीं हैं कि प्रभु किसीसे भी मेरी सिफारिश कर सकें ।

—देवेन्द्रकुमार गन्धर्व

आदर्श आत्म-बलिदान

पी० ऐंड ओ० कम्पनीका 'इजिप्ट' नामक जहाज सन् १९२२ में अचानक डूब गया और समुद्रमें चार सौ फुट गहराईमें जा पहुंचा । उस समय एक वीर युवकने जो आत्मबलिदान किया, वह सुनने योग्य है—

वह वीर युवक था जहाजका एक कर्मचारी । उसका नाम जार्ज जेनर था । जार्ज 'लाइफ बेल्ट' पहन रहा था । [illegible] डूबनेकी तैयारीमें था । जार्ज समुद्रमें कूदने ही जा रहा था कि उसकी दृष्टि जहाजकी ओर गयी । उसने हताश, निराश कुमारी मार्गरेटको देखा । जार्ज मार्गरेटके मुंहकी ओर देखकर उसका मन समझ गया और तुरंत लौट आया । एक ही क्षणमें उसने [illegible] 'लाइफ बेल्ट' को उतार कर मार्गरेटके सामने रख दिया और कहा— 'लो बहिन ! यह 'बेल्ट' पहन लो ।

मार्गरेट क्षणभर स्तब्ध रह गयी। एक अनजान स्त्रीके लिये अपना जीवन अर्पण कर देनेवाले उस युवककी ओर वह आश्चर्य-चकित दृष्टिसे देखने लगी। उसने आनाकानी करते हुए कहा—'ना-ना' यह बेल्ट तुम्हारा है; मेरा तो जो कुछ होना है, हो जायगा।'

मार्गरेट यों 'ना-नू' कर ही रही थी कि जार्जने उसको 'लाइफ बेल्ट' पहना दिया और कहा—'जा बहिन! जल्दीसे समुद्रमें कूद जा, अब समय नहीं है; भगवान् तेरी रक्षा करेंगे, भगवान् सहायता करेंगे— 'God save you ? Gad help you'

'परंतु—परंतु, आप क्या कीजियेगा ?'

'मेरी चिन्ता मत कर, मुझे तैरना नहीं आता।' जार्जने फीकी हँसी हँसते हुए कहा। जार्जके शब्दोंसे मार्गरेटको और भी आश्चर्य हुआ—'तैरना न आनेपर भी इस युवकने अपना लाइफ बेल्ट दे दिया।' अब विचार करनेका समय नहीं था। जहाज प्रत्येक क्षण समुद्रमें गहरा उतरता जा रहा था। जार्जके कथनानुसार मार्गरेट समुद्रमें कूद पड़ी।

दूसरे दिन मार्गरेटको बाहरसे आयी हुई मददकी टुकड़ीवालोंने निकाल लिया। जार्ज अगाध समुद्रके तलमें चला गया!

धन्य है इस वीर पुरुषको, जिसने अपने प्राणोंका बलिदान करके दूसरेके प्राण बचाये!

—मधुकान्त भट्ट

एक विचित्र घटना

गङ्गातटस्थ अनूपशहरके पास एक ग्राम खुशालगढ़में श्रीठाकुर महावीरसिंह नामक एक व्यक्तिका अष्टवर्षीय पुत्र विषूचिका (हैजा) रोगसे अकस्मात् ग्रस्त हो गया। जब दशा अधिक शोचनीय हुई तब दम्पति उसे लेकर अनूपशहर आये और डाक्टर उदयशंकर महताको दिखलाये। उन्होंने तुरंत ही एक इन्जेक्शन लगा दिया। थोड़ी देरमें बालक निर्जीव हो गया। डाक्टरसाहबने कहा कि 'इसमें अब कुछ नहीं है। यह मर गया। इसे ले जाओ।' दम्पतिने कफन लपेटकर उसे गङ्गामें प्रवाहित कर दिया और रोते-पीटते अपने गाँवको लौट गये।

सायंकालके समय वह लड़का बहता हुआ वेबस्टरगंजके सदर घाटपर जा लगा। बीचमें उसका वस्त्र यानी कफन उतरकर बह गया और लड़का जीवित हो गया। किसी अज्ञात दैवीशक्तिसे वह जलमग्न न हुआ और हाथ पीटता हुआ किनारेसे जा लगा और घाटपर जलमें जो जंजीर पड़ी हुई थी उसे पकड़ लिया। सायंकालका समय था। शकोईग्रामके एक पण्डित वहाँ बैठे संध्योपासनादि कर रहे थे। उन्होंने देखा कि इतना छोटा बच्चा किस प्रकार जलमें तैर रहा है और डूबा नहीं और जल्दीसे उसने जंजीर पकड़ ली। वे उठे और उठकर उन्होंने फौरन बच्चेको ऊपर खींच लिया और उससे पूछा कि तुम कैसे इतने गहरे जलमें तैरते रहे। उसने बतलाया कि "जलमें दो सफेद दाढ़ीवाले महात्मा मुझे यहाँतक हाथोंमें लाये और यहाँ आकर मुझसे कहा—'यह जंजीर पकड़ लो।' और मैं कुछ नहीं जानता।" पण्डितजीने उसे वस्त्र दिया, खाना खिलाया और उससे पूछा कि 'तुम गङ्गाजीमें कैसे और कहाँसे आये?' तब बालकने अपना ग्राम, पिताका नाम इत्यादि बतलाया। उक्त पण्डितजी उसे दूसरे दिन उसके गाँवको ले गये और उसके माता-पिताके हवाले कर दिया। वहाँ भी उसने उसी प्रकार सारा वृत्तान्त कहा। उनकी प्रसन्नता असीम थी। उन्होंने पण्डितजीको मिष्टान्न, दस रुपये नकद और वस्त्रादि भेंट किये। सारे गाँवने हर्ष मनाया और साथ ही सब आश्चर्यचकित हुए। एक मुद्दततक उनके घरपर भीड़ लगी रही कि लड़का क्या है, कोई महात्मा है, जिसको भगवान्ने स्वयं आकर मदद की। —लालबहादुर सक्सेना



महर्षिके भगवान्

अपने धर्मज्ञानमें गर्वोन्नत कुछ पादरी एक दिन महर्षि रमणके निकट जाकर सक्रोध बोले—'सुना है कि आपको ईश्वरका साक्षात्कार हो गया है और आप रोज सवेरे तीन घंटे एकान्तमें उनके साथ विचरते हैं। हम इस मिथ्या और पाखण्डको अब अधिक फैलने देना नहीं चाहते। भोली-भाली जनताको पथभ्रान्त करना सबमें बड़ा पाप होता है। हम इस पापको निर्मूल करनेका संकल्प करके आपके पास आये हैं। आप अपना ईश्वर हमें बताइये, नहीं तो हम आपके कपटका भंडाफोड़ करेंगे। यह जान लीजिये।

महर्षि अपनी स्वाभाविक मोहिनी मुद्रामें मुसकराये और शान्त स्वरमें बोले—‘भगवान् आपको शान्ति दें, आप सवेरे मेरे साथ चलिये और मेरे ईश्वरके दर्शन कर लीजिये ।’

महर्षिके कपटजालको तोड़नेके उत्साहमें पादरियोंको रातभर नींद नहीं आयी और सबेरा होनेसे पहले ही वे आश्रममें आ गये । नित्यकर्मसे निवृत्त होकर महर्षि उन पादरियोंके साथ जंगलकी ओर चले । पूरे दो मील चलनेके बाद नदीके किनारे स्थित एक झोंपड़ीके सामने वे रुके । महर्षि झोंपड़ीके अंदर गये और वहाँ चटाईपर लेटे एक कोढ़ी दम्पतिके शरीरमें तेल मलने लगे । मालिश करनेके बाद उन्होंने उन्हें नहलाया और उनको खिचड़ी पकाकर खिलायी ।

पादरी यह दृश्य देखकर मानो जड—पाषाण हो गये । उनकी आँखोंसे आनन्दाश्रुकी झड़ी लग गयी । रुद्ध कण्ठसे क्षमा-याचना करते हुए वे बोले—‘महर्षि ! अपराध क्षमा करें । अपराधियोंको भी आपने आज वह दे दिया है, जो पुण्यात्माओंको भी दुर्लभ होता है ।’

जब वे पादरी लौटकर शहरमें गये, तब वे आजीवन गद्गद स्वरसे लोगोंके बीच यही कहते रहे—‘उस दिन हमने इसी भूमिपर ईसामसीहको साकार, सजीव देखा था ।’

—सुब्रह्मण्य शास्त्री



मानवताका नमूना

तपसा गाँवका यह एक पुराना प्रसङ्ग है। इस गाँवके दो-तीन किसान किसी विवाहमें शामिल होनेके लिये दूसरे गाँव जा रहे थे। जब ये जाने लगे, तब किसानका एक छोटा बच्चा मचल गया और अन्तमें उसे भी साथ ले जाना पड़ा। जाना था पैदल। वे उस गाँवमें पहुँचे, विवाहका आनन्द लिया और अपने गाँवकी ओर लौटे। संध्याके समय बातें करते वे तीनों चल रहे थे। छोटा बच्चा साथ था। थोड़ी ही देरमें देखा आकाश बादलोंसे छा गया और गाज-बीजके साथ वर्षा होने लगी। जाड़ेका मौसिम, ठंडी जोरकी हवा और वर्षा। किसानोंको तो यह सब सहनेकी आदत थी, पर बेचारा बच्चा तो जाड़ेसे ठिठुरकर बेहोश हो गया। न बोलता है, न चलता है। अब क्या किया जाय? बरसात और ठंडी--दोनों ही मानो कमर कसकर धावा बोल रहे थे। बच्चेको तुरंत किसी गरम वस्तुसे सेंका जाय तो उसके प्राण बचें। पर वहाँ सेंककी व्यवस्था कैसे हो। किसान उस बच्चेको एक पेड़के नीचे ले गये और बरसातके थमनेकी राह देखने लगे। बच्चेकी बेहोशी बढ़ती ही जा रही थी।

इतनेमें दूरसे किसी गाड़ीके बैलोंके गलेकी घंटीकी आवाज सुनायी दी। इनको कुछ आशा हुई। गाड़ीके पास आनेपर इन्होंने

देखा कि उसमें उन्हींके गाँवके कपड़ेके व्यापारी दासभाई थे। सारी बातें सुनकर दासभाईने तुरंत ही बच्चेको गाड़ीपर ले लिया और किसानोंको भी बैठनेके लिये कहा। बच्चेका क्या होगा—इसी विचारमें चिन्ताग्रस्त हुए किसान म्लानमुख गाड़ीमें बैठ गये।

इसी बीच दासभाईने अपने पासका कपड़ेका बंडल खोला और उसमेंसे कपड़ेका एक नया थान निकाला तथा जेबसे दियासलाईकी पेटी निकाली। थानमेंसे कुछ कपड़ा फाड़कर दियासलाई जलाकर कपड़ेके लगा दी और उससे वे बच्चेको गरमी पहुँचाने लगे। किसान तो इस दृश्यको चकित दृष्टिसे देखते ही रह गये। अग्नि मन्द न हो जाय, इसलिये बार-बार थानसे कपड़ा फाड़-फाड़कर उसे जलाने लगे।

गाड़ी चलती हुई गाँवके समीप पहुँची। बच्चेको गरमी पहुँचनेसे उसकी भीतरकी ठंडक दूर हो गयी। उसने करवट बदली और इतना ही कहा—'बापू! बापू! बड़ी ठंढ लगती है।' 'अब ठंढ नहीं लगेगी, देख तो, अपना घर आ गया।' यों कहकर दासभाई कपड़ेके थानका बचा हुआ अन्तिम अंश जलाकर बच्चेको सेंक करने लगे।

गाँव पहुँचनेपर और भी अच्छे उपाय किये गये और दो दिनोंमें बच्चा बिल्कुल ठीक हो गया। दासभाईको अपने कपड़ेकी कीमत कभी याद ही नहीं आयी। असली कीमत तो वे ले ही चुके थे।

—इज्जतकुमार द्विवेदी



आदर्श मानव-हृदय

सेठ रामविलासजीका घराना बहुत ऊँचा समझा जाता था। ये पीढ़ियोंके सेठ थे। गाँवमें इनकी बड़ी इज्जत थी। विधाताका विधान—कमाई कम हो गयी। खर्चमें कमी हुई नहीं। घर कमजोर होता गया। इनके परिवारमें बहुत लोग थे। सबका पालन-पोषण इन्हींके द्वारा होता था। धीरे-धीरे सब अलग हो गये। इनके एक कन्या विवाहके योग्य थी। बड़ी सुशील, सुन्दर और घरके काम-काजमें चतुर। गीता-रामायण पढ़ लेती थी। उस जमानेमें छोटी उम्रमें लड़कियोंके विवाह होते थे। ये अपनी एक मात्र कन्याको अच्छे सम्पन्न घरमें देना चाहते थे। इनका नाम तो बड़ा था ही। एक जगह सगाई हो गयी। लड़का बहुत अच्छा सुन्दर, पढ़ा-लिखा। लाखोंका कारोबार। विवाहकी तैयारी होने लगी। कमाई घटी थी, इससे घर नोच-नोचकर ये खा रहे थे जेवर आदि बहुत कुछ बिक चुका था। विवाह इज्जतके साथ होना चाहिये। यद्यपि लड़केवाले बहुत भले आदमी थे। वे कुछ सौदा नहीं करते थे। तथापि इतनी तो आशा रखते ही थे कि सेठ रामविलासजी अपनी कन्याका विवाह बहुत अच्छा करेंगे। अच्छेका अर्थ—कम-से-कम दस हजार तो लगायेंगे ही। रामविलासजी भी इससे कम नहीं लगाना चाहते थे। उस जमानेके दस हजार आजके तीन-चार लाखके बराबर समझिये।

रामविलासजीने किसी तरह आठ हजारका प्रबन्ध किया। चार हजार नकद आ गये, जिससे गहना बनने लगा। सोना उस समय बीस रुपये तोला था। एक व्यापारीमें कई हजार पुराने

वने थे। उसने अमुक दिन चार हजार देनेका वचन दे दिया था।
ो हजार शेष थे—उनकी व्यवस्था भी हो ही जायगी। कुछ
ाजारका देना रहेगा तो वह धीरे-धीरे दे दिया जायगा, यह सोचकर
ठ रामविलासजी तथा उनकी धर्मपत्नी निश्चिन्त थे।

अकस्मात् उस व्यापारीके गल्लेमें घाटा लग गया, उसने देनेसे
न्कार कर दिया। वास्तवमें वह बेचारा असमर्थ हो गया था।
ामविलासजीके सिरपर तो मानो वज्र टूट पड़ा। कहींसे कोई आशा
हीं। बड़े मानी आदमी, किसीसे माँग नहीं सकते और माँगनेपर
भी कौन ?

उनके पड़ोसमें बाबू हरनारायणजीका घर था। बड़े सज्जन
ो दोनों स्त्री-पुरुष। रामविलासजीके साथ इनका बड़ा मेल था।
एक दिन हरनारायणजीकी स्त्री किसी कामसे इनके घर आयी थी।
ामविलासजी उस समय अपनी पत्नीसे रोते हुए कुछ कह रहे थे।
ृरनारायणजीकी पत्नी सुनना नहीं चाहती थी, लौट रही थी; पर
इतनी-सी आवाज कानमें पड़ गयी……सीताकी माँ, अब रामविलास
ुँह नहीं दिखा सकता। वह न किसीसे माँगेगा, न किसीके देनेपर लेगा
ही। आजतक पीढ़ियोंसे दिया-ही-दिया, कभी हाथ नहीं फैलाया। अब
या पुरखोंके मुखपर कालिख पोतेगा वह……पर छः हजार
लायेगा कहाँसे ?' अगली बात सुनी नहीं; इतना पता अवश्य लग गया
कि सीताकी माता (रामविलासजीकी पत्नी) फूट-फूटकर रो रही थी।
सीता रसोईघरमें थी।

बाबू हरनारायणकी पत्नी बड़ी साध्वी तथा दयार्द्रहृदया थी
और सीताकी मातासे उसका बड़ा प्रेम था। हरनारायणजी भी बड़े

सहृदय थे और घर भी सम्पन्न था। हरनारायणजीकी पत्नी आते ही रोने लगी। हरनारायणने पूछा—पर बता नहीं सकी, उसकी घिग्घी बँध गयी। कुछ देर बाद धैर्य धारणकर उसने कहा—'सीताका विवाह है। एक दिन सीताकी माताने उसे बताया था कि आठ हजारका प्रबन्ध कर लिया गया, दो हजारका और हो जायगा। पर आज मैं सुनकर आयी हूँ—उन्हें छः हजारकी जरूरत है। वे दोनों पति-पत्नी प्राण दे देंगे। अपने पास रुपये हैं—आप दे दीजिये।' पत्नीकी बात बाबू हरनारायणको बहुत अच्छी लगी और मन-ही-मन उसकी सहृदयता तथा स्वभावकी सराहना करते हुए हरनारायणजीने कहा—'मैंने पहले कुछ चेष्टा की थी, पर सेठ रामबिलासजीने स्वीकार नहीं किया। वे मुझसे लेकर अपना मान खोना नहीं चाहते और मैं भी उनकी बड़ी इज्जत करता हूँ।' पत्नी बोली—'तो दूसरा कोई उपाय सोचिये और आज ही—अभी कीजिये। देरसे अनर्थ हो जायगा। डगमगाती नैयाको तुरंत बचाइये।'

'अच्छी बात है' कहकर हरनारायणजी निकले और डेढ़ घंटे बाद लौटकर पत्नीसे उन्होंने बतलाया—"तुम्हारी सदिच्छा भगवान्‌ने पूर्ण कर दी। मैंने पता लगाया तो मालूम हुआ अमुक व्यापारीने उन्हें चार हजार मिलनेवाले थे, उसने घाटा लगनेसे इन्कार कर दिया। मैं सीधा उसके पास पहुँचा। उससे बात की। वह बेचारा भी रुपये न दे सकनेपर बहुत दुखी था। उसने बतलाया कि 'चार ही नहीं, छः हजार मुझको देने हैं। मैंने चार ही देनेको कहा था, पर दे नहीं पाया।' मैंने उसको समझाकर इस बातपर राजी कर लिया कि वह छः हजार रुपये मुझसे लेकर तुरंत सेठ रामबिलास-

जीको यह कहकर दे आये कि 'मैंने रुपयोंका प्रवन्ध कर लिया है, और आपके हिसाबके छः हजार रुपये दे रहा हूँ।' मैंने उसको यह आश्वासन दे दिया कि 'मैं ये रुपये आपसे कभी मांगूंगा नहीं, न आपके नाम ही खातेमें लिखूंगा। आपके पास कभी हो और आप देना चाहें तो दे दीजियेगा, नहीं तो, आपका घाटा मेरा ही घाटा है; आप जरा भी विचार न कीजियेगा।' वह सकुचाया तो सही, पर मान गया। मैंने उसको रुपये देकर तुरंत सेठ रामविलास-जीके पास भेज दिया और वह दे भी आया। मैंने उसको पुत्रकी शपथ दिलवा दी कि वह 'यह बात कभी किसीसे कहे नहीं।' अपने घरमें भी हम दो ही जानते हैं। हमलोग भी शपथ कर लें कि तीसरा कोई जाने ही नहीं।" स्वामीकी बात सुनकर पत्नीके प्राण हरे हो गये। उसके आनन्दका पार नहीं रहा। उसने आनन्दकी अश्रुधारासे अपने स्वामीके चरण पखार दिये।

सेठ रामविलासजी और उनकी पत्नीको कितना आनन्द हुआ, कौन जान सकता है। सीताका विवाह बड़े आनन्दसे हो गया। बाबू हरनारायण तथा उनकी पत्नी विवाहमें खूब सम्मिलित हुए। सब काम किये; पर कहीं यह जरा-सी भी कल्पना नहीं आने दी कि 'व्यापारीके दिये रुपयोंसे इनका कोई सम्वन्ध है। वे मानो भूल ही गये। उपकार करके भूल जाना और अपकार होनेपर उसे याद रखना ही तो मनुष्यता है। कई वर्षों बाद उस व्यापारीने एक दिन सेठ रामविलासजीको यह घटना तब सुनायी, जब रामविलासजी उसके व्यवहारकी बड़ाई कर रहे थे।'

—कालूराम



महान् परिवर्तन

पचास-साठ वर्ष पहलेकी बात है। खुशाबनगर सरगोधा जिलेमें झेलम नदीके किनारे बसा है। ज्येष्ठका महीना है। गरमी इधर इतनी पड़ती है कि दिनके दस बजेके बाद घाम और लूके मारे कोई घरसे बाहर नहीं निकलता। इस नगरके सर्वोच्च सरकारी पदाधिकारी तहसीलदार थे, जो देशविख्यात वजीराबादके दीवान-परिवारमें दीवान ठाकुरदासके सुपुत्र दीवान मदनगोपाल शैदा थे। घरमें धन-सम्पत्तिका कोई अन्त नहीं था, केवल मान-बड़ाईके लिये

सरकारी नौकरी कर ली थी। धन था, यौवन था, प्रभुता थी और इसपर रसिक तथा कवि थे । चार-चार घोड़े रखते और उनको विलायती बिस्कुट खिलाया करते । ये ही तो रईसोंके ठाट होते हैं। सुरा रानीसे इनका विशेष प्रेम था । विलायती ह्विस्कीकी पेटियोंका इनके यहाँ गोदाम था। ऐसी स्थितिमें ये भी वही सब करते थे, जो ऐसे लोग किया करते हैं।

एक बड़ा-सा कमरा था । झेलम नदीकी कोमल बालू बिछी हुई थी, उसको ठंढे जलसे सींचा गया था । खिड़की और द्वारोंपर खसखसकी टट्टियाँ लगी थीं । छतसे एक लंबा झालरदार पंखा लटक रहा था, जिसको एक व्यक्ति खींच रहा था । एक बड़ा पलंग डाला हुआ था, जिसपर कोमल श्वेत बिछौना बिछा था । उसपर दीवान साहब आराम कर रहे थे। द्वारपर द्वारपाल बैठा था कि किसीको भीतर न आने दिया जाय ।

इस जलती दोपहरीमें एक गौरवर्ण भव्याकृति तेजःपुञ्ज काषाय-वस्त्रधारी दीर्घकाय संन्यासीने खसखसका परदा उठाकर प्रवेश किया। उनको देखकर दीवान साहब उठ बैठे। उन्होंने संन्यासीजीको नमस्कार किया और चौकीपर बिठा दिया । दीवान साहब बोले— 'कहिये, महाराजजी ! क्या आज्ञा है ?' महात्माजीने उत्तर दिया कि 'आपसे एक भिक्षाकी प्रार्थना करने आया हूँ, देनेका वचन दें तो कहूँ ।' दीवान साहबने कहा कि पहले आप बता दें फिर वचन भी दिया जाय । हो सकता है कि जो वस्तु आप माँगें, वह मेरे पास हो ही नहीं। और यदि हो भी तो ऐसी हो कि उसको देकर

जन्मभर पछताता रहूँ ।' महात्माजी बोले—'वही वस्तु माँगूँगा जो आप दे सकेंगे और जिसको देकर आपको कोई कष्ट भी नहीं होगा।' दीवान साहबने देनेका वचन दे दिया ।

महात्माजीने पूछा—'आपकी सबसे प्रिय वस्तु कौन-सी है?' दीवानजीने उत्तर दिया—'ह्विस्की शराब ।' महात्माजीने कहा, 'तो, इसीका मुझे दान कर दो ।'

दीवान साहब एक सच्चे क्षत्रिय तो थे ही, बिना विलम्ब हँसकर बोले—'अच्छी बात है, महाराज ! दान कर दी ।' महात्माजीने कहा—'जितनी शराब तुम्हारे पास है, वह अब मेरी हो गयी; उसे मुझे सौंप दो ।'

सेवकोंको आज्ञा हुई, ह्विस्कीके बक्सोंपर बक्स आने लगे और खुलने लगे एवं महात्माजी बोतलें तोड़ने लगे । ह्विस्कीकी नाली बहने लगी । जब सेवकोंने कहा कि 'बस, समाप्त हो गयी ।' तब महात्माजीने दीवान साहबसे कहा—'कुछ कपट हुआ है । अस्तु, यह तो मेरी भिक्षा थी ! अब मैं आपको आज्ञा देता हूँ कि भविष्य कभी सुरासुन्दरीको मुँह न लगाना ।' यह आज्ञा देकर महात्माजी खसखसका परदा उठाया और बाहर चले गये ।

महात्माजीके इस वचनसे कि कुछ कपट हुआ है—दीवान साहब घबराये और सेवकोंसे पूछा कि 'क्या तुमलोगोंने कुछ शराब छिपा ली है ?' सेवकोंने उत्तर दिया कि 'सरकार ! केवल एक रहने दिया है; क्योंकि रात्रिको आप माँगते तो कहींसे ला लाहौरके अतिरिक्त और कहीं मिलती नहीं ।' दीवान साहबने

बक्सा भी खुलवाया और यह बोतलोंका दर्जन अपने हाथसे तोड़ दी। फिर उन्होंने आयुभर सुराको कभी हाथतक नहीं लगाया।

महात्माजी कौन थे, कहाँसे आये थे, किधर चले गये—कुछ पता नहीं चला। दीवान साहबके अन्तःकरणमें ऐसी उथल-पुथल--विचार-विप्लव मचा कि उसी समय सुरासुन्दरीके पुजारी जाने कहाँ चले गये और उनके स्थानपर एक मोहमायाग्रस्त संसारानलव्यथित मुमुक्षु आ गये। उनकी जीवन-धारा ही पलट गयी।

सद्गुरुकी खोजमें श्रीवृन्दावन पहुँचे। वहाँ यमुनाकिनारे बाबा प्रेमानन्द भारतीसे भेंट हुई और इन्होंने उनकी चरण-शरण ग्रहण की। भारतीजी किसीको दीक्षा नहीं देते थे, इसलिये इनको श्री १००८ मधुसूदनजी गोस्वामी महाराजसे दीक्षा दिलवा दी। भारतीजीको कुछ समय पश्चात् आदेश हुआ कि तुमने एक शरणागतकी उचित सहायता नहीं की! भारतीजी दीवान साहबके घर पहुँचे और तीन मास रहकर उन्हें एक उच्चकोटिके साधक तथा श्रीगौरचन्द्रका प्रेमी दास बना गये।

श्रीदीवानजीने देखा कि उत्तर-पश्चिमी भारतमें जहाँ उर्दू भाषाका राज्य है, वहाँ श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी महाराजके जीवन तथा शिक्षाका कुछ भी ज्ञान नहीं है। यह कार्य इन्होंने करनेका निश्चय किया और प्रभु-प्रेरणासे एक अनुपम ग्रन्थ-रत्न 'निमाईचंद'के नामसे उर्दू भाषामें प्रकाशित किया। जिसने पढ़ा, वही मुग्ध हो गया और श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका प्रेमी दास बननेकी इच्छा करने लगा।

ही थे, जिन्होंने अपना प्रचार-कार्य करानेके लिये शैदा साहिबका [illegible] कर दिया था ।

श्रीव्यासदेवजी महाराजका कथन है कि युगोंमें कलियुग [illegible] स्त्रीजाति उत्तम है; क्योंकि भावभक्तिके लिये स्त्री-हृदय ही [illegible] क्षेत्र है ! दीवान साहब तथा उनकी सती-साध्वी धर्मपत्नीने [illegible] ही समय दीक्षा ली थी और श्रीठाकुरजीकी सेवा-पूजाका कार्य इन[illegible] धर्मपत्नीने ही सँभाला था । इनका श्रीकृष्णजीमें वात्सल्य-भाव [illegible] यह भाव कितना प्रगाढ़ और किस विलक्षण स्थितिको पहुँच [illegible] था, यह निम्न घटनासे प्रतीत होता है ।

दीवान साहब रुग्ण थे । पलंगपर लेट रहे थे । इनकी [illegible] पत्नी समीपके कमरेमें श्रीठाकुरजीका शृङ्गार कर रही थीं । [illegible] उठीं 'औंतरियां डेया, जे मेरे कोलों नहींओं बन्हीणी तां आप [illegible] [अरे निपूतेके पुत्र ! यदि मुझसे नहीं बँधवानी है तो [illegible] बाँध ले] ।

दीवान साहबने पूछा कि 'किसको गाली दे रही है ?' [illegible] मिला कि 'यही तुम्हारा कन्हैया है ।' मैं सामने खड़ी होकर [illegible] बाँधने लगी तो दायीं ओर मुँह कर लिया; उधर गयी तो बायीं [illegible] मुँह फेर लिया । अब एक चपत लगी तो सीधा हो गया ।' [illegible] साहब अधीर होकर कहने लगे—'अरी ! तू सर्वशक्तिमान् [illegible] ब्रह्माण्डनाथको पीटती है ।' उसने उत्तर दिया कि 'पुत्र चाहे [illegible] महान् हो, माँका तो वह पुत्र ही है !' धन्य !　　—निरञ्जनदास [illegible]



ईमानदारीका चमत्कार

कई वर्षों पूर्वकी बात है । दुबेजी साधारण चुंगी-मोहर्रिर थे । गरीबीकी परिस्थिति थी । किसी मित्रकी संकटमें सहायता करनेके नाते उसके कर्जमें अपना मकान जमानतदार बनकर लिखवा दिया । मियाद बीतनेपर कर्जदार रकम न दे सका । साहूकारने दुबेजीको बुलवाया । दुबेजीने कहा—नालिस करनेकी आवश्यकता नहीं, कल सुबह मैं अपने मकानका कब्जा आपको दे दूँगा ।

साहूकार— आप कहाँ जायँगे ?

दुबेजी—अभी तो रिश्तेदारोंके यहाँ सामान डाल दूँगा, पीछे कोई किरायेका स्थान ढूँढ़ लूँगा ।

साहूकार चकित हो गया । उसने दुबेजीको प्रणाम किया । कहा, 'आपका मकान मैं नहीं लूँगा । मेरा कर्जदार जब भी परिस्थिति सुधरनेपर रुपया दे सकेगा, ले लूँगा । आपकी धर्मपत्नीका भी देहान्त हो चुका है । छोटे-छोटे बच्चोंको और आपको मैं इस प्रकार कष्टमें नहीं डालूँगा ।'

—त्रेतानाथ तिवारी

सच्ची मानवता

बात है उन दिनोंकी, जब थर्ड क्लासकी तो बात ही क्या, इंटर तथा सेकंडके डिब्बोंमें भी बैठनेतकका स्थान पा जाना सौभाग्य समझा जाता था और आरामसे यात्रा करना तो जीवनमें एक महत्त्वपूर्ण घटना समझी जाती थी। उन्हीं दिनों मुझे भी आवश्यक कार्यवश खंडवासे इंदौरतककी यात्रा करनी पड़ी।

इंदौर जानेवाली गाड़ी खंडवा जंक्शनसे ही बनती है। इससे दूसरी गाड़ियोंसे आकर इंदौरकी ओर जानेवाले दूरके यात्री गाड़ीके रवाना होनेतक गाड़ीमें अपना सामान रखकर बाहर कुछ विश्राम कर लेते हैं और यहाँसे बैठनेवाले यात्री भी सहूलियतसे अपना स्थान खोज सकते हैं, तो भी गाड़ियोंमें होनेवाली भीड़ और स्थान पानेकी असुविधाको देखते हुए मैंने पहलेसे ही दूसरे दर्जेका टिकट ले लिया था और डिब्बेमें जाकर सीटके एक सिरेपर बालिस्तभरका स्थान पा लिया था।

जिस सीटपर मैं बैठा था, उसी सीटपर और उसके सामनेवाली सीटपर दो व्यक्ति सिरसे पैरतक ओढ़े सो रहे थे। उन्हें डिब्बेमें आने-जानेवाले मुसाफिरों और उनके उतरने-चढ़नेवाले सामानकी धड़-बड़ाहटसे तनिक भी विघ्न नहीं होता था। उन्हें जगानेकी हिम्मत भी तो किसीमें नहीं थी, कौन जान-बूझकर झगड़ा मोल ले।

उसी समय डिब्बेमें एक मद्रासी परिवारने—जो देखनेमें सुशिक्षित था—प्रवेश किया। परिवारमें छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष मिलाकर १०-१२ व्यक्ति थे। सामान भी काफी था। कुलियोंने सामानका ढेर लगाना और जमाना शुरू किया। इनमें सोये हुए

उन दोनों व्यक्तियोंकी नींदमें बाधा आयी। अँगड़ाई लेकर उनमेंसे एक उठ बैठे और डिब्बेमें खड़े हुए यात्रियोंकी भीड़का दृश्य देखकर स्तम्भित रह गये। झटसे उठे, अपना बिस्तर लपेटा और अपने सहयोगीको भी जगाकर बिस्तर लपेटनेका आदेश दिया। और वे लोग अपने बैठनेभरके स्थानमें साधारण यात्रियों-जैसे बैठ गये। उनके बैठ जानेसे काफी जगह खाली हो गयी थी। खड़े हुए नव-आगन्तुक परिवारके कुछ व्यक्तियोंने भी वहाँ स्थान पा लिया। मैं यह सब कुछ उन्हींके पास बैठा देख रहा था।

गाड़ी चली। बातचीत भी चली। बातचीतके सिलसिलेमें विदित हुआ कि उन सोये हुए व्यक्तियोंमेंसे पहले उठनेवाले ग्वालियरके सी० आई० डी० के सुपरिंटेंडेंट और बाद में उठनेवाले इंदौरके सी० आई० डी० के इन्सपेक्टर थे। दोनों महाशयोंकी बातचीत-व्यवहारसे ऐसा आभास नहीं होता था कि वे कोई बड़े पुलिस-अफसर हैं। साधारण मुसाफिरों-जैसे बैठे, सबसे घुल-मिलकर बातचीत कर रहे थे, मानो कई दिनोंके जाने-पहिचाने हों। इंदौर-तक हमारा साथ रहा। रास्तेभर खूब बातचीत हुई। मैं उनके व्यक्तित्व और व्यवहारसे बहुत ही प्रभावित हुआ।

अधिकार और मानवतामें तेल और पानी-जैसा सम्बन्ध है। आजका अधिकारी-वर्ग सच्ची मानवतासे परे हट गया है। तो भी इन चमकनेवाले काँचके टुकड़ोंमें कई हीरे आज भी विद्यमान हैं, यह मुझे तब मालूम हुआ।

—रेवाशंकर मांगरोले



श्रद्धा एवं विश्वासका बल

सात-आठ साल पहले मैं प्रयागमें था। जून १९५० में बीमार पड़ा और सितम्बरतक बीमार रहा। कई सौ रुपये डाक्टरो फलों एवं दूधके पीछे खर्च हुए। आर्थिक स्थिति दयनीय थी। मेरी स्त्रीने पासके गहनोंको गिरवी रख-रखकर मेरी चिकित्सा करायी। धीरे-धीरे मैं स्वस्थ हुआ, पर उस समयतक लगभग सभी गहने हाथसे निकल चुके थे। मेरी अस्वस्थतामें स्त्रीने अथक परिश्रम एवं परिचर्या की थी। दिनमें पाँच-छः बार स्नान करती; तुलसी, नीम एवं पीपल को जल चढ़ाती; दुर्गासप्तशतीका पारायण करवाती। इसी प्रकार वे दिन बीते। अपनी बीमारीके दिनोंमें ही मुझे एक डा० श्रीबलदेव-प्रसादजी शुक्ल (होम्योपैथ) के दर्शनका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मेरे अच्छे होते-होते मेरी स्त्री बीमार पड़ी। पासमें पैसा था नहीं, फिर शेष गहनोंको बेच-बाँचकर मैंने उसकी चिकित्सा करवाना प्रारम्भ किया। दशा अत्यन्त गम्भीर हो चुकी थी। दो-तीन अच्छे-अच्छे डाक्टरोंसे चिकित्सा करायी, पर दशा बिगड़ती गयी। डबल न्यूमोनियाकी शिकायत बतायी गयी। एक या दो उच्च श्रेणीके वैद्य भी आये, पर सब लोग रोग हटानेमें असमर्थ रहे। पैसा चुकनेपर

निराश होकर मैं दारागंजमें डा० वलदेवप्रसादजी शुक्लके पास गया। (पहले ही दिनके दर्शनपर मुझे उनके प्रति अत्यन्त आकर्षण-सा हो गया था और फिर कभी-कभी उनके पास जाकर उनसे कुछ धार्मिक चर्चा भी किया करता था।) उन्होंने सारा समाचार सुना और कुछ ऐसे ढंगसे सान्त्वना दी कि मेरी अकुलाहट दूर हो गयी। मुझसे पूछा—'ब्राह्मण हो, गायत्री तो जानते ही होगे?' मैंने स्वीकारात्मक उत्तर दिया; साथ ही यह भी वताया कि 'कभी भी मैं उसका जप नहीं करता, केवल जानताभर हूँ।' उन्होंने तव आश्वासन देते हुए मुझे गायत्री-मन्त्रके जपने तथा वीमारके प्रति उसके प्रयोगकी विधि वतायी तथा मेरे सामने ही मेरी शीशीमें पानी भरकर दे दिया कि इसे ही दवाके रूपमें पिलाओ।

मुझे उनके प्रति श्रद्धा थी तथा उनके वचनोंमें विश्वास। आकर तदनुसार कार्य किया। वह पानी ही पिलाने लगा। तीसरे दिनसे दशा सुधरने लगी। पहले वह अपना अङ्गतक नहीं डुला सकती थी; पर पाँच दिनोंके वाद वह विना किसीका सहारा पाये ही लेट सकती थी या उठकर बैठ सकती थी। दस दिनोंके लगभग वीतनेपर चारपाईसे उतर सकती थी और इस प्रकार लगभग डेढ़ महीनेमें वह स्वस्थ हो गयी।

लोग भले इसे यह कहकर टाल दें कि वीमारीकी भी अवधि होती है या ऐसी ही होनी थी; पर मैं सोलहों आने कह सकता हूँ कि यह गायत्री-माँकी प्रत्यक्ष कृपा थी।

—श्रीरामनरेश मिश्र वी० ए०, एल० टी०



नमकका बदला

शिवदीन बीस वर्षसे बाबू रामदेवजीकी दूकानपर जमादार था । बचपनसे ही अपने मामा कालीचरनके साथ वह कलकत्ते आया था और बाबू रामदेवजीके यहाँ ही पल-पोसकर बड़ा हुआ था। घरमें बच्चेकी तरह आता-जाता । बाबू रामदेवजीके बहुत अच्छे दि उसने देखे थे और समय-समयपर हजारों रुपये इनाममें पाये थे कानपुर जिलेमें घर था । बाबूकी कृपासे शिवदीनके सौ बीघा खे हो गया था, बीसों गाय-बैल हो गये थे । बड़ा सुखी था ।

बाबू रामदेवके दिन बदले । व्यापारमें घाटा लग गया । एक कन्या विवाह-योग्य थी । पत्नी-पति दोनों दुखी रहने लगे । उन्होंने शिवदीनको नहीं छोड़ा । शिवदीन छोड़कर जाना भी नहीं चाहता था । शिवदीनका हृदय मालिककी दयनीय दशासे बहुत दुखी था । उसके मनमें मानवता जागी । वह छुट्टी लेकर घर गया और घर जाकर उसने अपना आधा खेत तथा तीन जोड़ी बैल बेच दिये । नगद अट्ठाईस सौ रुपये लेकर वह कलकत्ते लौटा । बड़ा संकोच,

मालिकसे कहे कैसे ? बाबू रामदेव दूकान गये थे । दुपहरके समय शिवदीन घर आया और अपनी मालकिनसे सामने रोकर बोला—'माताजी ! मुझे आपने लड़केकी तरह पाला-पोसा और खिला-पिलाकर बड़ा किया । मैं आज एक प्रार्थना करने आया हूँ । आप मेरी प्रार्थनाको टालियेगा नहीं ।' उसकी यह दशा देखकर रामदेवजीकी स्त्रीको बड़ी दया आ गयी । शिवदीन क्या प्रार्थना करनेवाला था, इसकी तो उसको कल्पना ही नहीं थी । उसने कहा—'बेटा ! तुम कहोगे, सो करूँगी, तुम रोओ मत ।' शिवदीनने थैली चरणोंमें रखकर कहा—'माताजी ! बहिन गोदावरीके ब्याहमें इन पैसोंको खर्च करके मुझको सुखी कीजिये । मेरे घरपर जो कुछ है, सब बाबूका ही दिया हुआ है । इतने दिन मैंने आपका नमक खाया है । मैं सुखी रहूँ और आप बहिनके विवाहके लिये दुखी रहें, यह भला मेरे जीते-जी कैसे हो सकता है ?' यह कहकर शिवदीन चरणों-पर गिरकर रोने लगा ।

शामको दूकानसे लौटनेपर बाबू रामदेवजीको सब पता लगा । उस समय कन्याका अच्छा विवाह दो-ढाई हजारमें हो जाता था । रामदेवजीको संकोच तो बहुत हुआ, पर उन्होंने स्वीकार कर लिया । किसीको पता भी नहीं लगा और गोदावरीका विवाह सम्पन्न हो गया । शिवदीनकी खुशीका पार नहीं था । बाबू रामदेवजी और उनकी पत्नी शिवदीनकी स्वामिभक्ति, उदारता तथा ख़बागयतापर अपने-को न्यौछावर कर रहे थे ।



दैवी सहायता

श्रीचिन्तामण रामचन्द्र, डायरेक्टर जनरल, मेडिकल डिपार्टमेण्ट पंजावने कहा कि "मैं जब आई. एम. एस. पास करनेके बाद सक्खर (सिन्ध) में सिविल सर्जन नियुक्त हुआ, तब मुझे एक बार काश्मीर देखनेका चाव हुआ। उस समय मेरे मित्र श्रीनिर्मल-चन्द्रजी डी. टी. एस. नार्दर्न रेलवे सक्कर थे। अपने परिवार और उनके परिवारको साथ लेकर मैंने काश्मीर जानेकी व्यवस्था की। मेरे परिवारमें मेरी पत्नी और तीन पुत्र थे और निर्मलचन्द्रजीके परिवारमें उनकी पत्नी और दो कन्याएँ थीं। सब व्यवस्था

वारामूलासे घोड़ेकी वग्गियोंमें की गयी। हमें काश्मीरमें इंजीनियर श्रीधनराज साहनीके यहाँ पहुँचना था।

वारामूलासे जब पट्टन नामक स्थानपर पहुँचे तो अँधेरेने आ घेरा। इस अँधेरेमें आगे बढ़े तो घोड़े विचक गये और नदीकी ढालपर उतर गये। लैण्डो वग्गीका घोड़ोंसमेत नदीमें फिसल जानेका भय भयंकररूपसे उपस्थित हुआ। हाहाकार और स्त्री-बालकोंमें रोना-चीखना शुरू हो गया। पर मुझे परमात्माका स्मरण आया, प्रार्थना की। कहीं कोई सहायता मिलने की आशा नहीं थी। घोड़े ढालपर उतरते जा रहे थे, इतनेमें एक बड़ा पत्थर लैण्डोके पहियोंमें फँस गया। घोड़े चारों पैरोंसे नदीमें झूल गये। इसी बीच बहुत-से आदमी 'पीरदस्तगीर वारामूला काश्मीर' जोर-जोरसे कहते हुए वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने घोड़ागाड़ीको घोड़ोंसमेत पीछेसे खींचकर सड़कपर लगा दिया। हम सब सँभले। मैं उतरकर सहायता करनेवालोंको धन्यवाद और पुरस्कार देना चाहता था, पर वे तेजीके साथ आगे बढ़कर गायब हो गये। बहुत पुकारा, पर किसीने उत्तर ही नहीं दिया। हमलोग परमात्माको और उनको हृदयसे धन्यवाद देते हुए कुशलपूर्वक काश्मीर अभीष्ट स्थानपर रातके नौ बजे पहुँच गये। तबसे मैं प्रतिदिन पूजा-पाठमें लीन रहता हूँ। किसीको कुछ विशेष पूछना हो तो इस पतेपर पूछ सकते हैं। श्री सी. आर. बब्रे, रिटायर्ड डायरेक्टर जनरल आई. एम्. एस्. ९४।१२ थेरंडेवाने प्रभात रोड पूना ४। —कविराज प्रतापसिंह

———:०:———

अभिमानशून्यता और नम्रताका नमूना

आपका पत्र मिला। पर मैं उससे वैसा आनन्द प्राप्त नहीं कर सका। 'मैं कैसा वैष्णव हूँ ?' महाजनने लिखा है--

मैं वैष्णव हूँ ! मानूँगा तो निर्मानी न रहूँगा मैं।
मानप्रतिष्ठा आ घेरेगी, नरक-प्रवाह बहूँगा मैं॥

इसपर आपने तो मुझे 'वैष्णव-चूड़ामणि' कहकर सम्बोधित किया है। मैं जरा भी असावधान हो जाऊँगा तो मेरे मनमें 'वैष्णव-

---

* एक बहुत बड़े विद्वान् सद्गुणसम्पन्न वयोवृद्ध वैष्णव महानुभावको मैंने सहज श्रद्धाके कारण 'वैष्णव-चूड़ामणि' लिख दिया था। उसके उत्तरमें उनका जो आदर्श पत्र मिला है, उसका कुछ अंश यहाँ दिया गया है। वैष्णवमें कैसी नम्रता, विनय और अभिमानशून्यता होनी चाहिये, यह बात इससे सीखनी चाहिये।---सम्पादक

दास' की जगह 'वैष्णव'-अभिमान आकर मुझे साधुके द्वारा सम्मान पानेके लिये लालायित कर देगा। 'अमानित्व' बड़ी ही कठिन वस्तु है। जड़ अभिमान सदा-सर्वदा हमारे हृदयमें छिद्रान्वेषण करता हुआ प्रवेश करनेकी चेष्टा करता रहता है। अतएव, आप परम बान्धव हैं, सदा सतर्क रहियेगा—कभी दुर्योधनका अभिमान मेरे अंदर प्रवेश न कर सके। आशीर्वाद दें, जिससे मैं वैष्णवका दास होनेकी योग्यता प्राप्त कर सकूँ, महाजनोंकी भाषामें श्रीभगवच्चरणोंमें यह निवेदन कर सकूँ—

त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ।

'हे लोकनाथ! आप मेरा यह समझकर स्मरण करें कि मैं आपके भृत्यके भृत्यके परिचारकके भृत्यके भृत्यके भृत्यका भृत्य हूँ।'

गोपीभर्तुःपदकमलयोर्दासदासानुदासः।

मैं गोपीनाथ भगवान्के चरणकमलोंके दासके दासका अनुदास हूँ'—श्रीश्रीमन्महाप्रभुकी इस आदर्श शिक्षासे अनुप्राणित होकर—

'वयं तु हरिदासानां पादत्राणावलम्बकाः॥

'हमलोगोंके लिये तो हरिदासोंके पैरोंकी जूतियाँ ही अवलम्बन हैं'—अपना यह परिचय हृदयसे दे सकूँ। और भी आशीर्वाद करें जिससे कापट्यपूर्ण दैन्य हृदयको कलुषित न कर सके, भक्तयुक्त दैन्य दैन्यका मेरे हृदयमें आविर्भाव हो।



इंग्लैंडका संस्कार-दर्शन

इंग्लैंडकी आर्थिक और औद्योगिक स्थिति जितनी ऊँची है, उतनी ही वहाँ संस्कारिता और ईमानदारी भी ऊँची है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ जब इंग्लैंड गये थे, तब उन्होंने वहाँका जो संस्कार देखा, उसे उन्हींके शब्दोंके भाषान्तरके रूपमें यहाँ दिया जाता है—

एक जाड़ेके दिन मैं टेनब्रिज वेल्सकी एक गलीसे जा रहा था तो वहाँ एक वृद्ध और अशक्त मनुष्य खड़ा था। उसने मुझे कुछ कहा नहीं, कदाचित् भीख माँगना बन्द होगा; परंतु उसने मेरी ओर करुण दृष्टिसे देखा। मैंने उसको एक सिक्का दिया। परंतु उसको दिया हुआ मेरा सिक्का शायद उसकी धारणासे अधिक मूल्यका होगा; क्योंकि मैं थोड़ी ही दूर आगे बढ़ा था कि उसने मेरे

पीछे-पीछे आकर मुझसे कहा—'महाशय ! आपने भूलसे मुझको सोनेका सिक्का दे दिया है।' यों कहकर वह मुझे सिक्का वापस देने लगा। अन्तमें मेरे बहुत समझानेपर बड़े ही आग्रहसे उसने उसको रक्खा।

मुझे यह प्रसङ्ग याद न रहा होता, परंतु ऐसा ही एक दूसरा प्रसङ्ग कुछ ही दिनों बाद फिर बना—

'जब मैं पहली बार टोर्के रेलवे स्टेशनपर पहुँचा, तब एक मजदूरने मेरे सामानको उठाकर ताँगेतक पहुँचा दिया। मैंने परचूरनके लिये प्रयत्न किया, परंतु न मिलनेपर उसको मैंने आधा क्राउन दे दिया। ताँगा थोड़ी ही दूर गया था कि उस मजदूरने पुकारकर ताँगा रोकनेके लिये कहा। मैंने मन-ही-मन सोचा कि मुझको अजनबी जानकर यह अधिक पैसे लेना चाहता होगा। ताँगा रुका, तब उसने मुझको आधा क्राउन वापस देकर कहा—'महाशय ! आपने आधे क्राउनको पेनी समझा होगा।'

मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं इंग्लैंडमें कभी ठगाया ही नहीं, परंतु मुझमें यह मान्यता दृढ़ हो गयी कि जो विश्वासी होता है, वही विश्वास करना जानता है। मैं अनजान था और शिक्षा या दण्डका मुझे भय नहीं था, अतः पैसे देनेमें गड़बड़ी कर सकता था, परंतु लंदनके किसी भी दूकानदारने मुझपर कभी अविश्वास नहीं किया।'

—मधुकान्त भट्ट

—:०:—

आइसक्रीममें विष

"नेचर्स पाथ'के जून १९५८ के अङ्कमें 'आइस-क्रीम' जैसे साधारण खाद्य पदार्थमें मिलाये जानेवाले हानिकारक द्रव्योंके सम्बन्धमें एक चेतावनी छपी है। आजकल जो आइस-क्रीम बाजारमें मिलती है, उनमें से अधिकांश आदिसे अन्ततक रासायनिक पदार्थोंके संयोगसे बनाई जाती हैं। कृत्रिम ढंगसे उनमें सुगन्ध लानेके लिये जो रासायनिक पदार्थ मिलाये जाते हैं, उनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

Vamilla (मधुगन्ध) की जगहपर पिपरोनल (Piperonal) जूं मारनेकी दवा, cherry (प्रवदर) की सुगन्ध लानेके लिये ऐल्डीहाइड सी १७ (Aldehyde c17 —एक आग पकड़नेवाला

तरल पदार्थ, जिसका उपयोग रंग, प्लास्टिक और रबड़के निर्माणमें होता है), अनन्नासकी सुगन्ध लानेके लिये एथिल ऐसीटेट (Ethyl Acetete —जो चमड़ा और कपड़ा धोनेके काममें लिया जाता है—इसकी भाफ फेंफड़ा, यकृत और हृदयको हानि पहुँचाती है), केलेकी सुगन्ध लानेके लिये एमिल ऐसीटेट (Amyl Acetate — यह तेलसे बने रंगोंका घोलक है)। इसी प्रकारकी और भी चीजें मिलायी जाती हैं। 'नैचर्स पाथ' लिखता है कि आज आप अपने परिवारको सम्भवतः विष खिला रहे हैं। पर आइंदा जब कभी केलेके स्वादवाली आइस-क्रीमकी छटा देखकर आपका मन ललचावे, तब सोचियेगा कि ये गरम रखनेवाले तेल रंग तथा नाइट्रिक एसिडसे बने पदार्थोंको घोलनेवाले और जूँ मारनेवाले रासायनिक द्रव्योंके सम्मिश्रण हैं। तब आपको यह उतना आकर्षक नहीं लगेगा।

ब्रह्मविज्ञानकी दृष्टिसे कहें तो हम उसी बातको पुनः दुहरायेंगे, जिसे हम बार-बार कह चुके हैं कि सरलता तथा प्रकृतिके आडम्बरशून्य पथपर लौट चलनेसे बढ़कर और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। ताजे और प्राकृतिक उपादानोंसे बढ़िया आइस-क्रीम घरपर बनायी जा सकती है; परंतु जल्दबाजीके इस युगमें हम बाहरकी ही चीज लेना पसंद करते हैं और सब नहीं तो बहुत-सी वस्तुओंके द्वारा हम धीरे-धीरे अपने शरीरमें विष पहुँचाते रहते हैं। [illegible] रहना चाहिये।



त्यागकी सुवर्णतुला

नेताजीका आज जन्मदिवस था । आजाद हिंदसेनाके प्रचार-विभागकी ओरसे यह घोषणा की गयी थी—"आज नेताजीकी स्वर्णतुला की जायगी और उसके द्वारा मिली हुई सम्पत्ति 'आजाद हिंद सरकार'को अर्पण होगी ।" इस घोषणासे सिंगापुरमें रहनेवाले भारतीयोंका हृदय उत्साहसे भर रहा था। सब ओर आनन्द, नृत्य और जय-जयकारकी धूम मची थी । सवेरेकी कवायद करके सैनिक वापस डेरेपर लौट गये । दुपहरको नेताजीकी स्वर्णतुला होनेवाली थी । रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पोंसे सजे हुए कांटेके एक पलड़ेमें चांदी सोना, जवाहरात आदि रक्खे जानेवाले थे । सैनिकोंने घर-घर यह बात फैला दी थी । इस दिव्य दृश्यको देखनेके लिये हिन्दुओंके झुंड वहां आ पहुंचे ।

'इतने असंख्य धनका क्या होगा ?' एक युवतीने आश्चर्यसे पूछा।

'क्या होगा ?' एक सैनिकने उत्तर दिया। 'यह सारा धन भारतमाताकी मुक्तिके कार्यमें व्यय किया जायगा।'

एक जापानी स्त्री बोली—'तुम्हारा भारतवर्ष सचमुच एक विलक्षण देश है। हमारे शाहनशाहका तुलादान होता है तब सारा धन राज्यके कोषमें जमा होता है।' फिर मस्तक नवाकर उसने कहा—तुम्हारे देशकी उज्ज्वल त्याग-परम्परा सुप्रसिद्ध है। सर्वस्वका त्याग करके निकल जानेवाला, गौतम बुद्ध एक राजपुत्र ही था न ?' नेताजीके तुलादानके लिये सवेरेसे ही युवतियाँ अपने अलंकारोंको रेशमी रूमालोंमें बाँधने लगी थीं। मानो किसीने जादू कर दिया हो—सभी युवतियाँ अपने-अपने सौभाग्य-अलंकार स्वातन्त्र्य वीर नेताजीके चरणोंमें अर्पण करनेको तैयार हो गयी थीं।

तुलादानके आरम्भकी घोषणा करनेके लिये एक बंगाली डाक्टरके कुटुम्बकी कन्याने शङ्ख फूंका और तुरंत ही एक गुजराती वृद्धा माताने सोनेके पाँच पासे—अपने जीवनकी सारी कमाई—पलड़ेपर रख दी।

दससे बारह वर्षकी बालिकाएँ, लज्जावती **नववधुएँ**, जर्जर देहवाली वृद्धाएँ—सभी स्वातन्त्र्य-यज्ञकी वेदीपर
अर्पण करने लगीं। शङ्खनाद तथा 'जय हिंद'
रहो' के नारोंसे आकाश गूंजने लगा। २५

नीचा होने लगा, पर अभी वजन पूरा नहीं हुआ। गहनोंका पलड़ा ऊँचा था।

पास खड़े सैनिकने पुकारकर कहा—'अभी भी स्वर्णकी आवश्यकता है।' तुरंत ही स्त्रियाँ अपने कानोंसे, हाथोंसे गहने निकाल-निकालकर पलड़ेमें रखने लगीं। एक देवीने अपनी कलाईपरकी सोनेकी घड़ी उतारकर पलड़ेपर रख दी। पलड़ा कुछ नीचे आया, पर अभी नेताजीवाला पलड़ा नीचा था।

इसी बीच एक कोनेमें कुछ हलचल-सी हुई। कमाण्डर लक्ष्मीबाई और उनके दो साथी एक युवतीको सुवर्णतुलाकी ओर ला रहे थे। युवती सुबकियाँ भर रही थी, खुले केश थे और रोते-रोते उसकी आँखें सूजकर लाल हो गयी थीं।

सुभाषबाबूने लक्ष्मीबाईकी ओर प्रश्नार्थक दृष्टि डाली, तब उन्होंने कहा—'इस बहिनके पतिका युद्धके मोर्चेपर वीरगतिको प्राप्त होनेका समाचार कल ही मिला है।'

सुभाषबाबूने अपनी टोपी हाथमें लेकर युवतीका वन्दन किया। सुबकती हुई युवतीने भी नेताजीको नमस्कार किया। फिर कुंकुमसे पवित्र हुआ अपने मस्तकका सुवर्णफूल सौभाग्य-चिह्न उतारकर पलड़ेपर रख दिया।

सबकी आँखोंमें आँसू भर आये। सुभाषबाबूने गद्गद होकर कहा—'बहिन! तुम्हारी चरणरजके लिये देवता भी ललचाते हैं!'

परंतु पलड़े अभी समान नहीं हुए।

इतनेमें एक वृद्धा काँटेके पास आ पहुँची। उसने अपनी छाती-सरीखी एक तस्वीर दबा रक्खी थी। वह एक युवकका छायाचित्र था। उसके मुखपर पुष्पकी कोमलता थी और नेत्रोंमें जवानीका उल्लास। गर्दन स्वाभिमानसे ऊँची हो रही थी।

'यह मेरे एकमात्र पुत्रका छायाचित्र है नेताजी!' गद्गद स्वरसे वृद्धा कहने लगी। 'परंतु युद्धके पहले ही सिंगापुरमें ही अंगरेजोंने उसे फाँसीपर लटका दिया था। क्या करूँ? परमेश्वरने मुझको दूसरा पुत्र दिया नहीं, नहीं तो उसको मैं आज भारतमाताके चरणोंमें अर्पण कर सकती।'

इतना कहकर उसने तस्वीरको जमीनपर पटक दिया। पटकते ही तस्वीरका काँच टुकड़े-टुकड़े हो गया! वृद्धाने अंदरका छायाचित्र निकाल लिया और उसे एक सोनेके फ्रेममें डालकर पलड़े पर रख दिया।

और तुरंत ही सोनेवाला पलड़ा नीचा हो गया।

नेताजी कूदकर बाहर निकल आये। उनका अङ्ग-अङ्ग काँप रहा था। उन्होंने पुकारकर कहा—'कौन कहता है भारत स्वतन्त्र नहीं होगा? पुत्रहीन माताका आशीर्वाद कभी खाली नहीं जा सकता!'

और नेताजीने उस बुढ़ियामाईके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया।

—के० का० जानी



बहूका आदर्श त्याग

सेठ हरिविलासजी बड़े प्रतिष्ठित व्यापारी थे । कई तरहका
कारोबार था । उनके बड़े लड़के बालमुकुन्दका विवाह पाँच वर्ष
पहले हो गया था । सुशीला बहू घरमें आ गयी थी । बालमुकुन्दको
मैट्रिक करवाकर हरिविलासजीने कारोबारमें लगा दिया था और वह
सफलतापूर्वक काम करने लगा था । छोटे लड़के रामकुमारने एम०
कॉम पास कर लिया था, उसकी आगे भी कुछ और पढ़नेकी इच्छा
थी । उसकी उम्र बीस सालकी थी । बड़ा सुन्दर छरीले बदनका
किशोर था रामकुमार । उसी शहरके सेठ रामानन्दजी अपनी एकमात्र
लड़की कमलाके लिये वरकी खोजमें थे । उन्होंने एक दिन राम-
कुमारको देखा । श्रीहरिविलासजीके घरसे वे परिचित थे ही ।
कमलाने १६ वर्षकी अवस्थामें बी० ए० पास कर लिया था ।

रामानन्दजीने श्रीहरिविलासजीसे मिलकर स्वयं बातचीत की । दोनों ओर घर, वर, कन्या सभी योग्य थे । रामकुमारकी पढ़ाई बंद हो गयी और कमलाके साथ बड़ी धूमधामसे रामकुमारका विवाह हो गया । विवाहमें ससुर हरिबिलासजीने लगभग एक लाख रुपयेका गहना बहूको चढ़ाया था और पिता रामानन्दजीने भी डेढ़ लाखसे कमका गहना बेटीको नहीं दिया था । सब ओर आनन्द छाया था । कमलाका स्वभाव बड़ा ही मृदुल, मिलनसार, विनम्र और सेवाप्रिय था । उसने अपनी मधुर वाणी और सेवासे पति, जेठानी, जेठ, सास, ससुर सबको आप्यायित कर दिया ।

समय एक-सा नहीं जाता । दो-तीन साल बाद ही गल्ले तथा तीसी-सरसोंमें भयानक मंदी आयी । हरिविलासजीके पास बड़ा स्टाक था । उन्हें लगभग पचास लाखका नुकसान हुआ । व्यापारियोंमें और आढ़तियोंमें भी बहुत बड़ी रकम डूब गयी । जहाँ जितने रुपये थे, सब मँगवा-मँगवाकर श्रीहरिविलासजीने दे दिये । जमीन-जायदाद भी बन्धक रख दी—बेच दी, तब भी लगभग दस लाख रुपये देने रह गये । श्रीहरिविलासजी अपार चिन्ताके समुद्रमें डूब गये ।

हरिविलासजीकी स्त्री चम्पाने अपना सारा गहना—लगभग दो लाखका लाकर पतिके सामने रख दिया और कहा—'इसे बेचकर रुपये काममें ले लीजिये ।' सुशीला पीहर गयी हुई थी, गहना साथ ले गयी थी, इससे उसके माता-पिताने उसका गहना उसे नहीं लाने दिया । वे जान गये थे कि 'हरि
है और वे सर्वस्व खोकर भी एक-एक पैसा

पुत्री भी अपना गहना दे देगी।' अतएव सुशीलाके बहुत कहने-सुननेपर भी उन्होंने गहना नहीं दिया। इससे सुशीला और बालमुकुन्द दोनोंको दुःख भी पर्याप्त हुआ।

सेठ हरविलासजी अपनी पत्नीका गहना भी लेना नहीं चाहते थे। उन्होंने मने भी किया, परंतु उनकी धर्मपत्नी चम्पाने उनकी बात नहीं मानी। बड़ा आग्रह किया, तब लेना पड़ा। वे बहुओंके गहनेकी बात भी करना पाप समझते थे। उन्होंने अपनी पत्नी चम्पासे तथा अपने दोनों लड़कोंसे कह दिया था कि बहुओंको यह पता भी न लगे कि उनकी सासने गहना दे दिया है। नहीं तो वे भी देना चाहेंगी और बहुओंसे गहना लेना उनके लिये मरणसे अधिक दुःखदायी होगा।'

बड़ी बहू सुशीलाका गहना तो उसके नैहरवालोंने दिया ही नहीं; छोटी बहू कमलाके पास ढाई लाखका गहना था, किसी तरह उसे पता लग गया। बात यह हुई कि ससुर हरिविलासजी एक दिन अपनी पत्नी चम्पासे अपने दुःखकी बात कह रहे थे कि 'तुम्हारे गहनेसे लगभग सवा दो लाख मिल गये हैं। लगभग पांच लाखका प्रबन्ध तेलकी मीलपर बैंकसे हो गया है। अब ढाई-तीन लाखकी और जरूरत है। उसके बिना इज्जत रहनी मुश्किल है।' उस समय कमला किसी कामसे उस कमरेमें पहलेसे आयी हुई थी। हरिविलासजी और चम्पा बात करते पीछे कमरेमें आये थे। कमला अलमारीकी आड़में थी, उसको उन्होंने देखा नहीं। कमलाने सारी बातें सुन लीं। उसने मनमें विचार किया, मेरा यह गहना किस

किस काम आयेगा ? इन्होंने तथा मेरे पिताने मुझको दिया था । अतएव इन्हींकी तो चीज हैं । मेरी सासने सब दे दिया तो मैं क्यों न दे दूं ।'

कमलाने अपना गहना निकाला और पति रामकुमारसे कहा—'स्वामी ! आप मुझे रोकियेगा नहीं, मेरा यह गहना फिर किस काम आयेगा । मैं गहना रक्खूं और अपने पुरखोंकी इज्जत चली जाय—ससुरजी दुःखके मारे घायल हुए फिरें, आपको भी उससे मानस-क्लेश भोगना पड़े, यह कदापि उचित नहीं है । गहना मेरे भाग्यमें होगा तो फिर हो जायगा । मेरे लिये तो सबसे मूल्यवान् गहना आप हैं तथा आपका एवं आपके माता-पिताका सुख है । इन्हें मैं बचाकर रख सकूँगी तो मेरे समान भाग्यशालिनी और कौन होगी ?'

युवती पत्नीकी बात सुनकर रामकुमारका हृदय आनन्दसे भर गया । उसके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बह चले । उसने कहा—'बड़े भैया तथा भाभी बहुत दुखी हैं; क्योंकि उनका गहना भाभीके पीहरवाले देते नहीं । बड़े भैया तथा भाभी पीहरवालोंसे लड़नेको तैयार हैं, पर इस बातको पिताजी पसंद नहीं करेंगे और उन्हें बड़ा दुःख होगा । इससे बड़े भैया तथा भाभी कुछ बोल नहीं सकते । इधर हीरे, मोती तथा सोनेके दाम कुछ बढ़े हैं, इससे तुम्हारे गहनेके लगभग तीन लाख मिल जायँगे । पिताजीको इतनी-सी ज सारा काम हो जाएगा, पर तुम्हारे माता-पिता तो होंगे ?'

कमलाने कहा—'नहीं, मेरे माता-पिता

उन्हें मेरे इस व्यवहारपर गौरव होगा और यह भी अच्छा हुआ कि जेठानीजीके पीहरवालोंने उनका गहना नहीं दिया। नहीं तो अपनेको इस सेवाका अवसर नहीं मिलता। उनका गहना रह गया तो घरमें ही रहा न? फिर उनके तीन-तीन बच्चे भी तो हैं। अपने तो अभी कोई संतान नहीं, इससे कोई चिन्ता भी नहीं है।'

पतिकी सम्मति प्राप्त करके कमलाने सारा गहना ले जाकर सासको दे दिया और उसके द्वारा ऐसे शब्दोंमें ससुरजीसे गहना लेनेके लिये विनती की कि वे मन न होनेपर भी इन्कार नहीं कर सके। उनका हृदय गद्गद हो गया। उनके रोम-रोमसे बहूके प्रति आशीर्वाद झरने लगा।

श्रीहरिविलासजीकी इज्जत रह गयी। कारोबार बंद नहीं हुआ। कमलाके पिता रामानन्दजीने भी कारोबार चलानेमें सहायता की। भगवान्की कृपासे तीसरे ही साल सारा घाटा पूरा हो गया। पूर्वकी अवस्थासे भी अच्छी स्थिति हो गयी। जमीन-जायदाद छूट गयी। गहना फिर बन गया। पहलेसे ज्यादा बना। घरमें सब ओर प्रसन्नता छा गयी। पर सुशीलाके मनमें अपने नैहरवालोंके व्यवहारसे बड़ा ही संकोच रहा। यद्यपि सास-ससुर तथा देवर-देवरानीने तथा उसके पतिने सदा उसे संकोच न करनेकी बात ही कही और उसके प्रति स्नेह, प्रेम तथा आदरका ही सच्चा व्यवहार रक्खा। उसका बाप भी क्या था?

—गजानन्द गौतम



जीवनका सच्चा तत्त्वज्ञान

कुछ समय पहले मैं वड़ोदामें था, उस समय एक दिन सूरसागरके पंपके पास एक भाईने मुझे रोककर पूछा—'आप कहांके हैं ? वसोके हैं ?' स्वाभाविक ही उनपर मेरी दृष्टि पड़ी। शरीरपर मैले-कुचैले, फटे कपड़े थे और एक झोली उनके पास थी। मैंने उन्हें अच्छी तरह देखा और मैं पहचान गया। मेरे मुंहसे निकला—'आप हैं ?' उन्होंने स्वीकार किया। उनको देखकर मेरी आँखका कोना गीला हो गया। तीस वर्ष पहलेके दो-चार प्रसङ्ग मेरे नेत्रोंके सामने नाचने लगे। उनके पिता उस समय वड़ोदा राज्यके किसी विभागमें वहुत ऊँचे अधिकारी थे और वड़े प्रतिष्ठित माने जाते थे। ईश्वर-कृपासे उन्होंने प्रचुर लक्ष्मी और सम्पत्तिका संग्रह किया था। पर शराबका बड़ा व्यसन लग गया। आठों पहर उसीमें रचे-पचे रहने लगे। उसीके साथ-साथ और भी कुछ वुरी वातें उनमें आ गयीं। ये उनके एकमात्र पुत्र थे। उन्हें उस समय उस तालुकाके गाँवोंमें सभी 'साहेब' कहते। पुत्र स्वभावसे कुछ अच्छे होनेपर भी पिताकी कुछ वुराइयाँ उनमें आ गयीं। रहनी-करनी.....'साहेबके शाहजादा' जैसी। उस जमानेमें रेशमी कपड़े, रानी छापके जूते और खाने-पीनेमें भी बड़े उदार, तालुकेभरमें मित्रोंकी भरमार। गाँवमें भी मित्रोंकी संख्या वहुत बढ़ी हुई थी। कभी-कभी अपनी मोटरसे वसोंमें भी आते और आनन्द करते। आज उस बालको

पच्चीस वर्ष हो गये। हम सब तो उनको भूल भी गये। परंतु वे ही भाई आज 'सफाई-जमादार'के लिबासमें मिले। प्रसङ्गकी मजा तो अब है। उनको देखकर मेरे मनमें बड़ी सहानुभूति और करुणा उत्पन्न हुई। मैंने तुरन्त उनसे कहा—'चलिये होटलमें कुछ खायें, चाय पीयें।' उन्होंने विनयपूर्वक अस्वीकार किया। इसपर भी मैंने पूछा—'भाई! आपको कुछ आवश्यकता है?' मेरी जेबमें लगभग तीस रुपये थे। वे स्वीकार करते तो मैं सारे दे देता, परंतु मुझे अत्यन्त अचरजमें डालते हुए उन्होंने सुजनताके साथ उत्तर दिया—'भाई! एक कर्मके तो दुःख भोग रहा हूँ, अब नये कर्म नहीं बढ़ाने हैं, मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। आपने इतने प्रेमसे बात की, इसके लिये आभारी हूँ।' मेरा हृदय द्रवित हो गया। कर्मके तत्त्वज्ञानकी कितनी सुन्दर और सादी समझ साधारण मनुष्यमें रहती है। दो दिनके बाद अचानक फिर मिल गये। उन्होंने कहा—'आपसे बन सके तो कहीं पहरेवाले या दरबानकी जगह मेरे लिये खोज दीजिये।' उसके अनुसार मुझसे जो बन सकता था, सो किया गया। उन्होंने कहा—'भाई! जायदाद, सगे-सम्बन्धी बन्धु-बान्धव सबसे छुटकारा मिल गया है। हमारे कुटुम्बकी और मेरे पापोंकी मानी जाने-वाली विरासत तो मुझको ही भोगनी है।' एक समय सोनेके थालमें जीमनेवालेकी इस स्थितिमें इतनी समता और परिस्थितिको अपना कर्मफल मानकर सहन करना—यही तो जीवनका सच्चा ज्ञान है।

नंदलाल हिम्मतलाल पुजारा

——:o:——

स्त्रीमात्र दुर्गा माता

पुरानी बात है। रामगोपाल और बुलाकीदास बीकानेरके दो युवक मित्र कलकत्तेमें रहते थे। बुलाकीदास बाबू मदनगोपालजीकी दूकानपर काम करता था। एक दिन दोनों मित्र प्रातःकाल गङ्गा नहाने जा रहे थे। उनके पीछे बाबू श्रीमदनगोपालजी चल रहे थे। मदनगोपालजीने इनको देख लिया था, इन्होंने उनको नहीं देखा। दोनों मित्रोंके आगे एक तरुणी सुन्दरी वेश्या जा रही थी। कुछ तरुण उसके आगे-पीछे ठठोली करते चल रहे थे। रामगोपालने अपने मित्र बुलाकीदाससे वेश्याकी ओर इशारा करके कुछ कहा। बुलाकीदास बोला--'गोपाल ! खबरदार, ऐसी बात मुंहसे कभी मत निकालना, न सोचना ही। वेश्या हो चाहे कोई हो। स्त्रीमात्र मेरी माँ है। मेरे गुरुजीने चण्डीका पाठ करते बताया था कि जगत्की सारी स्त्रियाँ दुर्गाका रूप हैं। सबको माँ समझो भैया ! तुम कभी आइंदे ऐसी भावना ही मत करना।' मदनगोपालजी अपने कर्मचारी बुलाकीदासकी इस बातको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उस समय तो वे कुछ नहीं बोले। पर उसी दिनसे उन्होंने बुलाकीदास-जीका वेतन पंद्रह रुपया मासिक बढ़ा दिया। --विजयशंकर व्यास



दो आँसुओंने मनका मैल धो दिया

मेरे पिता चार भाई थे और उनके एक मामा भी उन्हींके साथ रहते थे, जिनका नाम था बिहारीलाल। मैं उन दिनों बहुत छोटा अवश्य था; किंतु इतना समझता था कि प्यार क्या होता है और कटुता क्या होती है। पहले तो मेरे पिता, तीनों चाचाओं और मामामें बहुत प्रेम बना रहा; सब एक ही मकानमें रहते थे और सब कारबार भी एक ही साथमें होता था। फिर न जाने क्या बात हुई कि मेरे पिताकी मृत्युके पश्चात् मामा और चाचाओंमें किसी प्रकार न बनी और मामा अर्थात् मेरे बाबा मकान और गाँव छोड़कर एक मील दूर दूसरे गाँव सरैयामें जाकर बस गये और वहाँ जाकर उन्होंने एक विधवासे विवाह भी कर लिया। पहले तो मेरे चाचाओंकी उनसे दुश्मनी ही थी, किंतु अब विधवासे विवाह कर लेनेके कारण घृणा भी हो गयी। एक दूसरेके यहाँ शादी-ब्याह और होली-दीवालीतकमें कोई नहीं जाता था। कुछ लोगोंने आपसमें मेल करानेका भी प्रयत्न किया, किंतु वह सब व्यर्थ गया।

गाँवमें प्लेगकी बीमारी आयी और मेरी एक बुआको उठा ले गयी। बाबाको किसीने उनके मरनेतककी खबर न दी। इसके पश्चात् मेरे सबसे छोटे चाचा द्वारिका सख्त बीमार पड़े। तीसरे दिन उन्होंने चलाचलकी तैयारी कर दी। प्रातःकालसे ही वे आँखें फाड़-फाड़कर सबको देखने लगे। मेरी चाची पछाड़ खा-खाकर उनके ऊपर गिरने लगीं। धीरे-धीरे उनका बोल भी बंद हो गया। लोगोंने यह जानकर कि द्वारिका अब केवल घड़ी-दो-घड़ीके मेहमान

हैं, उन्हें चारपाईसे नीचे जमीनपर लिटा दिया । किंतु जमीनपर लेटे हुए उन्हें एक घंटा बीत गया और उनके प्राण न निकल सके । वे बराबर आँखें फाड़-फाड़ सबकी ओर ऐसे देखते रहे जैसे मानो उनकी आँखें किसीको खोज रही हों। लोगोंने घरके स्त्री-बच्चोंको एक-एक करके उनके सामने किया, किंतु फिर भी उन्हें शान्ति न मिली । अन्तमें किसीने बिहारीबाबाका नाम लिया और द्वारिकासे पूछा 'क्या तुम अपने मामाको देखना चाहते हो ?' मुँहसे बोल तो नहीं निकला; किंतु मुखकी मौन आकृति और आँखोंने जैसे उनके मनकी बात कह दी हो। इस समय सारी दुश्मनीको भुलाकर बाबाको लेने सरैया आदमी दौड़ाया गया । आध ही घंटेमें बाबा आकर मौजूद हो गये । सब पुकार उठे—'बिहारी आ गये, बिहारी आ गये ।' बाबा आकर चाचाके पास बैठ गये और सजल नेत्रों तथा रुँधे कण्ठसे कहने लगे—'द्वारिका ! मैं आ गया हूँ । अपने मामासे एक बात तो कर लो । मैं पास ही खड़ा यह सब कुछ देख रहा था । चाचाकी पुतलियाँ फिरीं, मुखपर प्रसन्नताकी आभा-सी आयी, फिर बाबाकी आँखोंने दो आँसू ढलका दिये । चाचाकी आँखें तो पहलेसे ही खुली थीं, किंतु अब होंठ भी खुल गये थे, जैसे वे होंठ कुछ कहना चाहते हों । किंतु वे खुले-के-खुले ही रह गये । अपने मामाके दर्शन करके चाचा चिर-निद्रामें विलीन हो गये । इन दो आँसुओंने चाचा और बाबा तथा सारे घरभरके ही मनका सारा मैल धो डाला ।

—एम० आर० गुप्ता



शंख एवं घंटा-ध्वनिसे रोगोंका नाश

(१) शङ्ख-ध्वनि—सन् १९२८ ई० में बर्लिन युनिवर्सिटीने शङ्ख-ध्वनिका अनुसंधान करके यह सिद्ध किया है कि शङ्ख-ध्वनिकी शब्द-लहरें बैक्टीरियानामक (संक्रामक रोगके) कीटाणुओंको नष्ट करनेमें उत्तम और सस्ती ओषधि है । यह प्रति सेकंड २७ घन फुट वायु-शक्तिके जोरसे बजाया हुआ शङ्ख १२०० फीट दूरीके बैक्टीरिया जन्तुओंको नष्ट कर डालता है और २६०० फुटके जन्तु इस ध्वनिसे मूर्च्छित हो जाते हैं । बैक्टीरियाके अतिरिक्त इससे हैजा, गर्दनतोड़ बुखार, कम्पज्वरोंके कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं और ध्वनि-विस्तारक स्थानके पासका स्थान [illegible] निर्जन्तु हो जाता है । मृगी, मूर्च्छा, कण्ठमाला और कोढ़के रोगियोंके अंदर शङ्ख-ध्वनिकी प्रतिक्रिया होती है और वह रोगनाशक होती है । शिकागोके डा० डी० ब्राइनने तेरह बहरोंको शङ्ख-ध्वनिसे और [illegible]

था और आजतक न जाने कितने और ठीक हुए होंगे । मेरे एक मित्र केशरी-किशोरजीने अभी गतमास एक नवयुवकको, जिसका कान बहता था तथा बहरापन था, शङ्ख बजानेका परामर्श दिया, जिससे दस दिनोंमें उचित लाभ हुआ । प्रयोग अभी चल रहा है ।

(२) घंटा-ध्वनि—अफरीकाके निवासी घंटाको ही बजाकर जहरीले साँपके काटे हुए मनुष्योंको ठीक करनेकी प्रतिक्रियाको, पता नहीं कबसे आजतक करते चले आ रहे हैं । ऐसा पता लगा है कि मास्को सैनीटोरियममें घंटाकी ध्वनिसे ही तपेदिक रोग ठीक करनेका सफल प्रयोग चल रहा है । सन् १९१६ में बकिंघममें एक मुकदमा चल था—एक तपेदिक रोगीने गिरिजाघरमें बजनेवाले घंटाके सम्बन्धमें यह दावा अदालतमें किया था कि इसकी ध्वनिके कारण मैं बराबर स्वास्थ्यहीन होता जा रहा हूँ और मुझे काफी शारीरिक क्षति पहुँचती है । इसपर अदालतने तीन प्रमुख वैज्ञानिकोंको घंटा-ध्वनिकी जाँचके लिये नियुक्त किया । यह परीक्षण सात महीने किया गया और अन्तमें वैज्ञानिक-बोर्डने यह घोषित किया कि घंटाकी ध्वनिसे तपेदिक रोग दूर होता है और कहा जाता है कि इससे अन्य कई शारीरिक कष्ट कटते हैं तथा मानसिक उत्कर्ष होता है ।

अभी बजा हुआ घंटा आप पानीमें धो डालिये और उस पानीको उस स्त्रीको पिला दीजिये, जिस स्त्रीको अत्यन्त प्रसव-वेदना हो रही हो और प्रसव न होता हो; फिर देखिये—एक घंटेके अंदर ही सारी आपत्तियोंको हटाकर सरलतापूर्वक प्रसव हो जाता है ।

—श्रीमनमोहन लाल एच० एम० डी०



सबका भला हो

मैं जब छोटा था, पड़ोसीके नाते मेरे एक बाबा होते थे । न जाने क्यों, वे शहरभरमें 'बाबा' नामसे ही प्रसिद्ध थे । मेरे पिताजी भी उन्हें बाबा कहते थे । यहाँतक कि उनके सगे भाई भी उन्हें बाबा कहते थे । एक उनकी स्त्री ही थी, जो उन्हें बाबा नहीं कहती थी । बहुत बूढ़े भी नहीं थे । शायद किसी विशेष गुणके कारण वे बाबा बन बैठे होंगे । मैं तो इतना ही जानता हूँ कि प्रातः उठते ही वे यह कहा करते थे कि 'सबका भला हो ।' दिनमें कई बार उनके मुँहसे यही सुननेको मिलता—'सबका भला हो ।' कम-से-कम उनके मुँहसे दुःख-सुखमें और शब्द निकलते हुए मैंने नहीं सुने । मुझे अपनी माँ और पिताजीसे यही सुननेको मिला कि 'सबका भला हो'—यही उनका ॐ है, राम है, राधा और श्याम है । न जाने क्यों, उनके मुँहपर यह इतना चढ़ गया था कि तकलीफमें भी उनके मुँहसे यही निकलता था—'सबका भला हो !' इसका इतना असर अवश्य हुआ था कि शहरमें दो-चार आदमी बस दो-चार, 'सबका भला हो' कहने लगे थे । पर कुछ लोग ऐसे भी थे, जो 'सबका भला हो' व्यङ्ग्यके रूपमें इस्तेमाल करते थे । कोई-कोई जो बाबाकी बराबरीके थे, वे जब उनसे बोलते या मिलते तो इस तरह कहकर बोलते 'कहिये, सबका भला हो ! [illegible]' उनके बारेमें जहाँतक मुझे याद है, सबने यही सुना कि वे सबके भले थे और सबकी भलाई सोचते थे । सबकी भलाईकी बात करते थे और सबकी भलाईके लिये जो बन पड़ता था, [illegible] करते थे । यह और भी अनोखी बात है कि उनके [illegible]

एक बनियेका मकान था। पूरब-उत्तरकी ओर एक ब्राह्मणका मकान था। उत्तरमें मुसल्मानका मकान था। पश्चिममें थोड़ी-सी गली छोड़कर एक नाईका मकान था। पर किसीको उनसे किसी तरहकी शिकायत न थी और न उनको किसीसे शिकायत थी। मैं नहीं कह सकता कि नगरभरमें उनका कोई दुश्मन था। इस उक्तिके नाते कि चन्द्रमामें कलङ्क होना चाहिये, शायद कोई दुश्मन रहा हो; मगर मुझे पता नहीं।

उसी गाँव में दो ब्राह्मण-परिवार थे, जो बाबाके ही मुहल्लेमें रहते थे। उन दोनों घरोंके मुखिया पण्डिताईका काम छोड़कर पंसारीकी दूकान करते थे। एकका नाम था देवीदास, दूसरेका नाम था ईश्वरदास। वे कबसे पंसारीका काम करते थे, मुझे पता नहीं। ईश्वरदास बहुत बूढ़े थे और खूब मोटे शीशेकी ऐनक लगाते थे। शहरभरमें ईमानदारीके लिये प्रसिद्ध थे। उनकी दूकानपर हरदम आपको ग्राहक मिल सकते थे, भीड़ लगी रहती थी। किंतु क्या आप बता सकते हैं या सोच सकते हैं कि वे ग्राहक किस उम्रसे किस उम्रतकके रहे होंगे? शायद आप कल्पना भी न कर सकेंगे। अलग-अलग अटकलें लगायेंगे, तब भी आप ठीक-ठीक न बता सकेंगे। सुनिये, उनकी दूकानपर भीड़ रहती थी चार बरसकी उम्रसे लेकर बारह-तेरह बरसतकके बालकोंकी। शायद ही कभी कोई बड़ी उम्रका जवान या बूढ़ा उनकी दूकानपर देखनेको मिल जाय। अगर मिल जाय, तो फिर यही समझिये कि जिस घरसे वह सौदा लेने आया है, उस घरमें या तो कोई बच्चा ही नहीं या

अगर है तो स्कूल गया होगा, नानीके यहाँ गया होगा अथवा बरातमें गया होगा ।

क्या आप बता सकते हैं कि ऐसा क्यों होता था ? आप सोच ही नहीं सकते । सुनिये, उनकी दूकान थोड़ी ऊँची थ छोटे बच्चे चढ़ ही नहीं सकते थे । बूढ़े बाबाको हाथ पकड़कर चढ़ाना पड़ता था । इससे आप अंदाजा लगा सकते हैं कि वे होते हुए भी कितने ताकतवर रहे होंगे । पर यह तो ऐसी ब हुई, जिसका मतलब यह हुआ कि न बच्चोंको उनकी दूकानप जाना चाहिये, न माँ-बापको अपने बच्चोंको वहाँ भेजना चाहिये । बू आदमीको तकलीफ भी क्यों दी ?

नहीं, यह बात नहीं; सुनिये, उनका यह नियम था कि वे बच्चोंको चीज कुछ ज्यादा तौलकर देते थे । कुछ इस ख्यालसे कि यह रास्तेमें थोड़ा-बहुत गिरा देगा तो घरतक पूरी नहीं पहुँच पायेगी और फिर उसकी माँ शिकायत करेगी तथा दूकानकी बदनामी होगी। कुछ इस वजहसे भी कि बड़ोंकी तरह बच्चा तो यह कहेगा नहीं कि "थोड़ी और भी, बाबा !" बड़ोंको वे पूरी चीज तौलकर देते थे और बच्चोंकी कुछ 'और भी' के लिये गुंजाइश रखते थे । अगर किसीने 'और भी' कहा तो उसके कहनेसे थोड़ी और डाल दी और अगर वह चुप रहा, तो अपने-आप ही थोड़ी और डाल दी । यही कारण था कि बड़े लोग उनकी दूकानपर सौदा खरीदने नहीं आते थे । बच्चोंको ही भेजनेमें वे नफेमें रहते थे ।

एक बात और भी थी । इतने छोटे बच्चे उनकी दूकानपर

पहुँचते, जो यह भी बोलना नहीं जानते थे कि उन्हे क्या लेना है, कितने पैसे उनके पास हैं, कितनेकी क्या चीज लेनी है। वह तो एक कपड़ा लाते थे, उसीके कोनेमें एक चिट और दाम बँधे रहते थे। उस गाँठको खोलना, पढ़ना, उसके अनुसार सामान बाँधना, बाकी बचे पैसे बाँधना और फिर बालकको उसी तरह दूकानसे नीचे उतारना, जिस तरह ऊपर चढ़ाया था।

एक बात और। डेढ़-दो सेरकी एक हँड़िया भर रोज उनकी दूकानका चूरनका खर्च था, क्योंकि इसकी एक पुड़िया रूँगेमें लिये बिना कोई बच्चा दूकान छोड़कर जाता ही न था। प्रथम तो सब माँग ही लेते थे और यदि कोई न माँगे तो उसे अपनी यादसे दे देते थे।

जब इनकी मौत हुई, तब इनकी अर्थीके पीछे इतनी भीड़ थी कि अगर उस अतरौली गाँवका कोई राजा होता तो उसे भी यह भीड़ नसीब न होती। यहाँ यह भी याद रहे कि अतरौलीके मुर्दे अतरौलीसे आठ मील दूर रामघाट, गङ्गाके किनारे फुंका करते थे। एक चौथाई या इससे कम भीड़ रामघाटतक गयी और उनकी दाह-क्रिया उसने अपनी आँखों देखी।

'सबकी भलाई' या 'सर्वोदय' इसीमें है कि हम उन ईश्वरदासकी तरह जो भी काम करें, वह समाजकी सेवाके लिये करें। यह कम्बख्त पेट तो चोरीसे भी उतना ही भरता है, जितना ईमानदारीसे।

—महात्मा भगवानदीन



ताँगेवालेकी आदर्श ईमानदारी और सेवाभाव

घटना पुरानी नहीं, मुश्किलसे ४ वर्ष हुए होंगे । मध्यप्रदेशके एक प्रतिष्ठित व्यापारी पचास हजार रुपये लेकर दक्षिणमें (मैसूर, मदुरा और मद्रास) माल खरीदनेके लिये जा रहे थे । इस प्रान्तमें शतरंजी और साड़ियाँ एवं मैसूरमें चन्दनकी लकड़ीकी कलात्मक वस्तुएँ अच्छी और सुन्दर बनती हैं । व्यापारीने एक-एक हजारके ५० नोट बनयानके दोनों जेबोंमें रख लिये और जेबोंको खूब सी लिया था । सबसे पहले यह व्यापारी मैसूर उतरकर वहाँसे १४ मील दूर कृष्णराज-सागरका बाँध और इलेक्ट्रिक प्रदर्शन देखने गया ।

यह प्रदर्शनीय स्थल शामको ४ बजेसे रातके १० बजेतक मैसूर-सरकारकी ओरसे आम जनताके लिये खुला रहता था । व्यापारीने कृष्णराज-सागरका बाँध एवं अद्भुत विद्युत्-प्रकाश, जो कि फव्वारों

और क्यारियोंमें अपनी अनोखी छटा दिखाकर दर्शकोंको मोहित कर लेता है, देखा। देखकर वह पुलकी सीढ़ियोंपर चढ़ रहा था कि उसे अचानक चक्कर आया और वह पुलकी सीढ़ियोंपर लुढ़कता हुआ नीचे आ गया।

व्यापारीका शारीरिक सुदृढ़ गठन और शारीरिक शक्ति अच्छी थी। अतः वह हाथ-पैरों एवं मस्तिष्कका रक्त पोंछकर फिर पुलकी सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। अन्तिम सीढ़ीपर ज्यों ही पैर रखा कि उसे फिर जबर्दस्त चक्कर आया और दूसरी बार पुनः सीढ़ियोंपर लुढ़कने लगा। पुलके पास ही ताँगा स्टैंड है। कई ताँगेवाले खड़े थे, जिनमेंसे एक ताँगेवालेने इस व्यापारीको पुलकी सीढ़ियोंसे लुढ़कते देख लिया। वह चाबुकको ताँगेमें रखकर पुलपर आया। तबतक आहत व्यापारी लुढ़कता हुआ सबसे नीचेकी सीढ़ीपर आकर लहूलुहान हालतमें पड़ा था। बेहोशी भी आ गयी थी।

ताँगेवालेने उस रक्तरञ्जित व्यापारीको, जिसके वस्त्र रक्तमें सने थे, गोदीमें उठाया और जैसे-तैसे सीढ़ियाँ चढ़कर ताँगेमें सुला दिया। एक हाथसे व्यापारीको, जो कि वह मृतक-सी अवस्थामें था, पकड़े और एक हाथसे घोड़ेकी रास थामे अपने घोड़ेको हाँक रहा था। चार-पाँच मील चलनेके बाद व्यापारीको कुछ होश-सा आया और उसने लड़खड़ाती जबानसे पूछा, 'कौन ?' 'मैं हूँ ताँगेवाला। मैंने आपको कृष्णराजसागरके पुलके जीनेसे गिरते हुए देखा था। आपके साथ कोई था नहीं और आप बेहोशीकी हालतमें थे। मेरे मनमें आया कि मैं एक घायल व्यक्तिकी सेवा करूँ और आपको अपने घर पहुँचा

दूं। हूँ तो ताँगेवाला, पर ईमानदार हूँ और ईमानदारीके लिये ही जीता हूँ।'

व्यापारीने कोटकी जेबमेंसे एक सौका नोट निकालकर तांगेवालेको देते हुए कहा 'लो तुम्हारे लिये इनाम।'

ताँगेवालेने व्यापारीसे कहा—'सेवाका मूल्य सोने-चांदीके टुकड़ों या कागजके रंगीन टुकड़ोंसे नहीं आंका जा सकता। मैं आपको इसलिये नहीं लाया कि आप मुझे इनाम दें और न मुझे इस प्रकारका लोभ-लालच ही है। मेरा पेशा ऐसा है कि सभ्य-समाज इस पेशेको हल्का पेशा कहता है और हमारे समाजको बेईमान, धोखेबाज, चालबाज बतलाता है। पर ऐसी बात नहीं है। मैं तो भगवान्‌को चारों ओर देखकर जीता हूँ। मुझे डर लगता है कि यदि मैं बेईमान हो गया तो भगवान्‌के न्यायालयमें क्या उत्तर दूंगा। मैं ऐसा मानता हूँ कि इस प्रकार मेरा डरना मेरे लिये ईमानदार बननेके सम्बन्धमें रामबाण सिद्ध हुआ है।'

ताँगेवालेका लंबा भाषण सुनकर व्यापारीने कोटकी दूसरी जेबमेंसे सौ-सौके पांच नोट निकाल ताँगेवालेके हाथपर रख दिये। ताँगेवाला अबकी बार झल्ला उठा और उसने कहा, 'माफ कीजिये मुझे एक भी पाई आपसे लेना हराम है!' और उसने सौ-सौके पांच नोट व्यापारीको लौटा दिये, किंतु नोट व्यापारीके हाथोंमें न जाकर ताँगेमें ही गिर गये। ताँगेवालेने मुड़कर देखा तो व्यापारी बेहोश हो गया था और उसके मुंहसे सफेद झाग निकल रहे थे।

इस दृश्यको देखकर ताँगेवालेके मुंहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

प्रभो ! क्या यह व्यक्ति अपने घर पहुंचनेके पहले ही विदा ले
गा और मेरी सेवा अधूरी रहेगी ? यह व्यक्ति तो श्रीमान् मालूम
ड़ता है, अन्यथा दो-चार रुपयेकी मजदूरीके लिये ५.०० रुपये न
देता । लगता है यह व्यक्ति मैसूर या मैसूर-प्रान्तका नहीं है; यह हिंदी
बोलता है, उत्तरप्रदेश या मध्यप्रदेशका होना चाहिये । तब क्या
यह व्यापारी है ? तब तो इसके पास हजारों रुपये होंगे । मैसूर
यहांसे ८ मील दूर है और वहांतक पहुंचनेके लिये कम-से-कम एक
घंटा लगेगा ।

पांच नोट जो कि तांगेमें ही गिर गये थे, उन्हें उठाकर
उसने व्यापारीके कोटके जेबमें रख दिया । पर कोटके नीचे कुछ उठा
हुआ-सा भाग दीख रहा था, तांगेवालेने टटोलकर देखा तो बनयानके
दोनों जेब लबालब भरे थे । उसे संतोष हुआ कि दोनों जेब सिले
हुए थे । ठीक १० बजे तांगेवाला मैसूर पहुंचा और पुलिसस्टेशनपर
जाकर तांगा रोका और रिपोर्ट की ।

समयकी बात कि उस समय डी० एस० पी० वहीं थे । वे
अन्य चार पुलिस जवानोंके साथ तांगेके पास आये । देखा तो एक
सुन्दर सुडौल गौरवर्ण नवयुवक मुंहसे झाग डाल रहा है । कभी-
कभी एक सेकंडके लिये आंखें खुल जाती हैं । डी० एस० पी०
ने सबसे पहले सिविल सर्जनको फोन करके बुलाया । इसके बाद
पुलिसके जवानोंके साथ नवयुवककी तलाशी ली । कोटके जेबमें सौ-
सौके ७ नोट, माल खरीदनेकी सूची, डायरी और कर्नाटक रेस्टोरांकी
एक स्लिप मिली । कमीजका जेब खाली मिला । बनियानके जेब खोल-
कर देखे गये तो पचास हजारके नोट मिले ।

अब डी० एस० पी० को यह समझते देर न लगी कि यह मध्यप्रदेशका एक प्रतिष्ठित व्यापारी है, दक्षिण-प्रान्तमें माल खरीदने आया है। ताँगेवालेके बयान लिये। उसने ईमानदारीके साथ सभी घटनाएँ स्पष्ट रख दीं। ताँगेवालेकी ईमानदारीसे डी० एस० पी० को विशेष हर्ष हुआ कि एक ताँगेवाला, जिसे लोग बेईमान समझते हैं, कितना ईमानदार हो सकता है। फिर डी० एस० पी० ने कर्नाटक रेस्टोरेंटके मैनेजरको फोन किया कि रोजनामचा (जिसमें बाहर से आनेवाले मुसाफिरोंका नाम, धाम एवं पता होता है) लेकर शीघ्र आओ। इतनेमें सिविल सर्जन मय स्टाफ (नर्सरी एवं सर्जरी) के आ गये। उन्होंने बीमारीकी श्रमपूर्वक अच्छी तरह जाँच की।

जाँचकर सिविल सर्जनने बताया कि यह मरीज अधिक-से-अधिक एक घंटेका मेहमान है। सतत रक्तप्रवाहके कारण अब इसका बचना असम्भव है। डाक्टरने अथक प्रयत्न करके उस नवयुवक व्यापारीको सचेत किया। वह होशमें आ गया। उसने ...समें ही ताँगेवालेको बैठा देखा और धीमे स्वरमें कहा—'मैं ...णराज-सागर-पुलकी सीढ़ियाँ चढ़ रहा था कि एकाएक चक्कर ...या और मैं जमीनदोस्त हो गया। जैसे-तैसे साहस करके दुबारा ...ढ़ियाँ चढ़ने लगा कि मुझे फिर चक्कर आ गया। इसके बाद ... हुआ, यह मुझे पता नहीं। होश आनेपर मैंने अपने-आपको ... कि मैं एक ताँगेमें जा रहा हूँ। विचार आया कि ताँगेवालेने ...र्दीके नाते मुझपर दया की और मैसूर ले जा रहा है।

मैं ताँगेवालेकी हमदर्दीसे बहुत प्रभावित हुआ और मुझे

१००) इनाममें देने लगा। पर उसने नहीं लिये। फिर ५००) इनाममें दिये। इनाम देनेके बाद ही मुझे बेहोशी आ गयी। होश आनेपर मैं आपलोगोंको अपने सामने देखता हूँ। मुझे यह पता नहीं कि ताँगेवालेने ५००) लिये या नहीं; यह मुझे ईमानदार, नेक एवं सेवाभावी व्यक्ति मालूम होता है।' इतनेमें कर्नाटक रेस्टोराँके मैनेजर आ गये। उन्होंने वह रोजनामचा बतलाया, जिसमें निम्न प्रकार लिखा हुआ था—ता०–२२–१२–५४ श्रीमहेशचन्द्र कौल, फर्मका नाम महेशचन्द्र गिरिजाशंकर, निवासी मालपुरा, जिला बस्तर, मध्यप्रदेश। तीन दिनों रेस्टोराँमें ठहरनेकी स्वीकृति और मैनेजरके हस्ताक्षर थे।

इसके बाद महेश कौलने पुनः मन्द स्वरमें कहा—'मुझे ऐसा लगता है कि अब मैं कुछ ही मिनटोंका मेहमान हूं। ताँगेवालेने मेरी खूब सेवा की है, इसे पाँच हजार रुपये मेरी ओरसे इनाम दे देना। मैं पचास हजार नौ सौ रुपये लेकर घरसे चला था। पचास हजार मैंने बनयानके जेबमें रख लिये थे और नौ सौ ऊपरी खर्चके लिये, जिसमें ७००) अभी भी मौजूद हैं। शेष खर्च (मार्गव्यय आदि) हो गये। आप मेरी फर्मके नामपर फोन कर दें, मेरा छोटा भाई गिरिजाशंकर आ जायगा।'

डी० एस० पी० ने कहा—'आप घबराइये नहीं, हम सरकारी नौकर ही नहीं, आपलोगों (जनता) के भी नौकर एवं सेवक हैं। आपके ५०,७००) सुरक्षित हैं। आपने ताँगेवालेको पाँच सौ

दिये थे, वे उसने लिये नहीं और आपकी बेहोशी हालतमें उसने आपके कोटके जेबमें रख दिये थे। सचमुच तांगेवाला बहुत ही ईमानदार व्यक्ति है, इसकी ईमानदारी जनताको ईमानदार बननेका पाठ पढ़ाती है। मैंने बहुत-से ताँगेवाले देखे हैं, पर ऐसा ईमानदार ताँगेवाला नहीं देखा। आपकी बेहोशी हालत में वह ५०,७००) अपने कब्जेमें करके, आपका गला घोंटकर चाहे जहाँ भाग सकता था। पर जहाँ ईमानदारीका प्रश्न है, वहाँ न तो परका हनन होता और न स्वयंका, वहाँ तो स्व-परका संरक्षण एवं कल्याण होता है।'

महेश कौल डी० एस० पी० के कथनको ध्यानसे सुन रहा था कि दो मिनट बाद ही उसे खूनकी उलटी हुई और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। तमाम पुलिस स्टाफ, सिविल सर्जनका स्टाफ और कर्नाटक रेस्टोराँके स्टाफने सलाह करके निर्णय किया कि महेश कौलके शवका अग्नि-संस्कार तांगेवाला ही करेगा; इसकी महती सेवा है और सेवाके नाते इसे यह अधिकार प्राप्त है। तांगेवालेने काँपते हाथों 'कौल' के शवका अग्नि-संस्कार किया और चितामेंसे निकली धूम्रराशि अनन्त आकाशमें विलीन होने लगी।

शव-यात्राके यात्री विधिके विधानपर सोच रहे थे कि 'कौल' कहाँ जन्मा, कहाँ स्वर्गवासी हुआ और किस प्रकार पचास हजारकी रकम सुरक्षित बची रही। दूसरी ओर उपस्थित जनता तांगेवालेकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रही थी और तांगेवालेकी ईमानदारीके प्रति सभीके मस्तक झुके हुए थे।

तीसरे दिन महेशचन्द्र 'कौल' के छोटे भाई श्रीगिरिजाशंकर आ गये । उन्होंने महेशकी मृत्यु-सम्बन्धी सभी समाचार ज्ञात किये । उन्हें भाईकी मृत्युसे असह्य दुःख हुआ; पर ताँगेवालेकी ईमानदारी, उदारता एवं निःस्वार्थ वृत्तिसे अपार आनन्द भी हुआ । गिरिजाशंकरने विचार किया कि भाई साहब पचास हजार रुपयेका माल खरीदने आये थे । अब वे असमयमें ही चले गये, फिर ये रुपये मैं वापस क्यों ले जाऊँ ? बड़े भाईकी स्मृतिस्वरूप ताँगेवालेकी सेवाके उपलक्ष्यमें उसे दान क्यों न कर दूँ ? फलतः गिरिजाशंकरने पचास हजारकी बृहद् धनराशि ताँगेवालेको देते हुए कहा कि 'तुम्हें और तुम्हारे बच्चोंके ये काम आयेंगे ।' पर ताँगेवालेने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा—'भाई ! आप मुझे जो धनराशि दे रहे हैं, उसका मूल्य है; पर ईमानका मूल्य नहीं होता । अतः आप मुझे आशीर्वाद दें कि मेरे लिये सतत अमूल्यनिधि ईमानकी प्राप्ति हो; फिर मैं संसारमें सबसे बड़ा धनिक हूँ, ऐसा मैं मानता हूँ । आप मुझे क्षमा कर दें । मैं आपका आज्ञापालन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ । रही बात बच्चोंकी, सो वे अपने भाग्यके निर्माता स्वयं हैं । गरीबीमें ईमान बना रहे, यही मुझे और मेरे परिवारके लिये सब कुछ है ।' गिरिजाशंकरके मुँहसे अनायास निकल गया 'तुम मनुष्य नहीं, मनुष्यके रूपमें देवता हो । मैं अपने भाईको खोकर और तुमसे ईमानदारीका बोध-पाठ लेकर हर्ष-विषादके वातावरणमें अपने देश वापस जा रहा हूँ, तुम्हारी ईमानदारीकी चर्चा सर्वत्र करूँगा ।' धन्य ! —'स्वतन्त्र'

——:o:——

मनुष्यमें देवता

रायचन्दभाईका बम्बईमें जवाहरातका बड़ा व्यापार था। उन्होंने एक दूसरे व्यापारीसे सौदा किया। सौदेमें यह निश्चय हुआ कि अमुक तिथिके अंदर अमुक भावमें वह व्यापारी रायचन्दभाईको इतने जवाहरात दे दे। सौदेके अनुसार लिखा-पढ़ी हो गयी। कंट्राक्टके दस्तावेजपर हस्ताक्षर हो गये।

परिस्थितिने पलटा खाया। इसी बीच जवाहरातकी कीमत इतनी अधिक बढ़ गयी कि वह व्यापारी यदि रायचन्दभाईको कंट्राक्टके भावसे जवाहरात दे तो उसको इतनी अधिक हानि हो कि उसे अपना घर-द्वार तक बेचना पड़े।

रायचन्दभाईको जब उस जवाहरातके वर्तमान भावका समाचार मिला, तब वे तुरंत ही उक्त व्यापारीकी दूकानपर पहुँचे। रायचन्दभाईको देखते ही वह व्यापारी घबरा गया और बड़ी ही नम्रतासे कहने लगा—'रायचन्दभाई! मैं अपने उस सौदेके लिये बहुत ही चिन्तातुर हूँ। जैसे भी हो, वर्तमान बाजार-भावके अनुसार मैं

जवाहरातके नुकसानके रुपये आपको चुका दूँगा, आप चिन्ता न करें।'

रायचन्दभाईने कहा—'क्यों भाई ! मैं चिन्ता कैसे न करूँ। जब आपको चिन्ता होने लगी है, तब मुझको भी होनी ही चाहिये। हम दोनोंकी चिन्ताका कारण तो यह कंट्राक्टका दस्तावेज ही है न ? यदि इस दस्तावेजको नष्ट कर दिया जाय तो दोनोंकी चिन्ताकी पूर्णाहुति हो जाय।'

व्यापारीने कहा—'ऐसा नहीं; मुझे आप दो दिनकी मुहलत दीजिये। मैं कैसे भी व्यवस्था करके आपके पैसे चुका दूँगा।'

रायचन्दभाईने दस्तावेजको फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करते हुए कहा—'इस दस्तावेजसे ही आपके हाथ-पैर बँध रहे थे। बाजार-भाव बढ़ जानेसे मेरे साठ-सत्तर हजार रुपये आपकी ओर निकलते हैं। परंतु मैं आपकी वर्तमान परिस्थिति जानता हूँ। मैं ये रुपये आपसे लूँ तो आपकी क्या दशा हो ? रायचन्द दूध पी सकता है, खून नहीं।'

वह व्यापारी रायचन्दभाईके चरणोंमें पड़ गया और उसके मुखसे निकल पड़ा —'आप मनुष्य नहीं देवता हैं।'

छल-कपट, ठगी, झूठ और धोखेवाजीसे किसी भी प्रकार दूसरे मनुष्यकी बुरी परिस्थितिका लाभ उठानेके लिये आतुर आजका समाज इस महापुरुषके जीवन-प्रसङ्गसे प्रेरणा प्राप्त करे।

—मधुकान्त भट्ट



आस्तिकताका फल

१९४८ की बात है। मैं हाईस्कूलकी परीक्षामें प्रविष्ट हुआ था। इसके पूर्व मैंने काशीके एक संस्कृतविद्यालयमें अध्ययन करके व्याकरण मध्यमा उत्तीर्ण की थी। कुछ मित्रोंकी सलाहसे संस्कृतका अध्ययन स्थगित कर हाईस्कूलकी तैयारी करने लगा था। अतएव संस्कृतका छात्र होनेके कारण मैं गणितमें कमजोर था; क्योंकि संस्कृतके विद्यालयोंमें उन दिनों गणितके अध्यापनकी व्यवस्था नहीं थी। गणितेतर विषयोंमें मुझे काफी संतोष था। सभी प्रश्नपत्रोंका मैंने संतोषजनक उत्तर लिखा; पर गणितके प्रश्नपत्रमें वही हुआ, जिसकी मुझे आशङ्का थी। अन्यमनस्कताके साथ मैं परीक्षा-भवनसे बाहर निकला। अन्य सहपाठियोंसे प्रश्नपत्र मिलाया। ५० अङ्कोंमें केवल ११ अङ्कोंके प्रश्नोंका ही शुद्ध उत्तर लिख पाया था।

हृदय धक् हो गया। सारा उत्साह, सारी प्रसन्नता काफूर हो गयी। अनुत्तीर्ण हो जानेकी चिन्ताने मेरे मस्तिष्कमें अपना स्थायी स्थान बना लिया। दुःख और निराशा लेकर मैं घर लौट आया।

हमारे गाँवमें एक वृद्ध साधु रहते थे। वे परम भगवद्भक्त तथा वीतराग महात्मा थे। महात्माजी हमारे गाँवमें नदीके तटपर एक वटवृक्षके नीचे वर्षोंसे रहते थे। मैं जब भी छुट्टियोंमें कवोंसे गाँव जाता था, महात्माजीके दर्शन करने अवश्य जाता था। महात्माजी भगवत्कथाके साथ-साथ देशकी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दशाओंको सुननेमें भी बड़ी अभिरुचि रखते थे। वे विशेष पढ़े-लिखे न थे; पर महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरूके बारेमें उन्हे काफी ज्ञान था और इनकी चर्चा वे बड़े प्रेमसे सुनते थे। मैं जब भी जाता था, महात्माजीको अखबारी दुनियाका हाल बताकर उन्हें रामायण या अन्य धार्मिक ग्रन्थोंकी कथाएँ सुनाया करता था। इससे महात्माजी मेरे प्रति बड़ी कृपा रखते थे।

उस दिन मैं बड़ी ही आशा तथा विश्वासके साथ महात्माजीके पास पहुँचा और प्रणाम करके चरणोंके नीचे बैठ गया। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया और मेरी परीक्षाके बारेमें पूछा। मैंने गणितका प्रश्नपत्र बिगड़ जानेकी बात उनको बतायी और फिर कहा—'महाराज! यदि मैं अनुत्तीर्ण हुआ तो मेरा भविष्य अन्धकारमय हो जायगा।' महात्माजी कुछ क्षणोंतक मौन रहे, फिर बोले—'जाओ, भगवान् शंकरजीपर १०४ कलशी जल चढ़ाओ, उत्तीर्ण हो जाओगे।'

है। मैं ५० अङ्कोंमें केवल ११ अङ्कोंके उत्तर ही शुद्ध लिख पाता हूँ। और उत्तीर्ण होनेके लिये १७ अङ्कका आना परमावश्यक है।' इसपर महात्माजीने कुछ उत्तेजित होकर जोरसे मानसकी अर्धाली यह अंश सुनाया —'भाविहु मेटि सकहिं त्रिपुरारी' और कहा—'जाओ, शंकरजीके ऊपर जल चढ़ाओ।'

आदेशानुसार स्नान करके मैंने शंकरजीकी प्रतिमापर १०४ कलशी जल नदीसे लाकर चढ़ाया। इसके बाद मुझे ऐसा दृढ़ विश्वास हो गया कि मैं अब अवश्य सफल हो जाऊँगा।

नियमानुसार परीक्षाफल प्रकाशित होनेका समय आया। परीक्षाफल-प्रकाशनकी तिथि सुनकर मेरा हृदय धक्-धक् करने लगा। परीक्षाफल ज्ञात करनेके लिये गाँवसे कर्वी जानेका मेरा साहस न हुआ। संयोगवश कर्वीका एक व्यक्ति शीघ्र ही अपने एक सम्बन्धीसे मिलने हमारे गाँव आ पहुँचा। उसने बताया 'स्कूलके छात्र कह रहे थे कि तुम उत्तीर्ण हो गये हो।' सुनकर मेरी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। मैं तुरंत दौड़ा महात्माजीके पास और चरणोंमें जा गिरा। सारा हाल बताया और फिर उसी दिन कर्वीको भागा आया। समाचारपत्र देखा। मैं द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण था।

तबसे महात्माजीके बताये इस सहज 'अस्त्र'का उपयोग आवश्यकता पड़नेपर एम्० ए० तककी परीक्षाओंमें मैंने किया और सदैव सफल रहा। आज भी जब मैं किसी उलझन या संकटमें पड़ता हूँ, तब आशुतोष शंकर भगवान्को मुफ्तके थोड़ेसे जलसे खुश कर लेता हूँ।

—बाबूलाल गर्ग, एम्० ए०, शास्त्री



नीयतमें भेद

विहारीलाल और रामजीदास दो सगे भाई थे। विहारीलाल वड़े थे, रामजीदास छोटे। दोनोंके पत्नियाँ थीं और दोनोंके ही दो-दो घड़के थे। परस्पर वहुत प्रेम था। श्रीविहारीलाल ही वड़े होनेके नाते घरके मालिक थे। चारों वच्चोंको वे ही सँभालते; उनके लिये कपड़े वनवाने, फल-मिठाई लाने, पढ़ाईकी व्यवस्था करने आदि सव कार्य वड़ी दिलचस्पीसे विहारीलाल करते। घरकी तथा वच्चोंकी ओरसे रामजीदास निश्चिन्त थे। विहारीलालके दोनों वालकोंका जैसा पिताजीपर अधिकार था, ठीक वैसा ही रामजीदासके दोनों

बालकोंका ताऊजीपर । विहारीलाल भी किसी प्रकारका भे… वर्ताव कभी नहीं करते । चारों बच्चोंके लिये सब चीजें आतीं । घरमें रामजीदासकी पत्नीके लिये भी, जो कुछ आ… होता, जेठजी ही सब करते और उनके किसी बर्तावसे रामजीदा… पत्नीको कभी कोई शिकायत नहीं हुई । रामजीदास दूकानका काम दे… घरकी सारी देखभाल विहारीलाल करते ।

एक दिन छुट्टी थी, दूकानें बंद थीं । अतएव रामजीदास घर-पर ही थे । मकानके बाहरके आँगनमें एक कुर्सीपर बैठे कुछ प… रहे थे । चारों बालक खेल रहे थे । विहारीलाल बच्चोंके लिये फलादि लाने बाजार गये थे । बच्चे विहारीलालजीकी बाट देख रहे थे, … फल लाते हैं । थोड़ी ही देरमें विहारीलालजी लौट आये । वे एक झोलेमें आठ केले और आठ आम लाये थे । उनके आते ही रामजी-दास बड़े भाईके सम्मानार्थ कुर्सीसे उठकर एक ओर खड़े हो गये । विहारीलाल कुर्सीपर बैठ गये । चारों बालक खेलना छोड़कर फलोंके लिये विहारीलालजीके समीप आकर फल माँगने लगे । रामजीदास बच्चोंकी उत्सुकता देखने लगे । विहारीलालका उस ओर कोई ध्यान नहीं था । वे झोलेमेंसे फल निकाल रहे थे बच्चोंको देनेके लिये । केले तो एक-से थे । विहारीलालने झोलेसे निकालकर दो-दो केले चारों बालकोंको दे दिये । बचे आठ आम । आमोंमें चार कुछ घटिया तथा छोटे थे । चार उनसे कुछ बढ़िया जातिके तथा बड़े थे । विहारीलालने झोलेसे आम निकाले । चारों बच्चे हाथ पसारे खड़े थे । विहारीलालके बालकोंके नाम थे—मदन, विजय (गट्टू)

और रामजीदासके लड़कोंके नाम थे—मोहन तथा केसू। बिहारी-लालके चार आम एक हाथमें थे, चार दूसरेमें। बच्चे निर्दोष भावसे लपके। मदन तथा मटकू जिस हाथकी ओर लपके, उसमें घटिया छोटे आम थे। मदन तथा मटकूको झटककर बिहारीलाल अलग हटाने लगे। वे नहीं हटे, तब दूसरे बढ़िया बड़े आमवाले हाथको बिहारी-लाल मोहन तथा केसूकी ओरसे हटाकर यों घुमाया कि जिससे मोहन-केसू उन आमोंको न ले सकें और घटिया आमवाले हाथको उधर घुमाकर मोहन-केसूको वे आम दे दिये और मदन-मटकूको बढ़ियावाले दे दिये।

रामजीदास बड़े कौतूहलसे सर्वथा निर्दोषभावसे बच्चोंका खेल देख रहे थे, परंतु बड़े भाई बिहारीलालकी इस चीजको देखकर रामजीदासके मनमें बड़ा क्षोभ हो गया। घटियावाले आम स्वाभाविक ही उसके बच्चे—मोहन-केसूको दिये गये होते और बढ़ियावाले भी सहज ही मदन-मटकूको मिल जाते तो जरा भी बुरी बात नहीं थी। दोनों हाथोंमें सहजरूपमें लिये हुए आम थे; जिस ओर जो बच्चे आये, उन्हींको वे मिल गये। पर बिहारीलालकी आज यह स्पष्ट चेष्टा हुई कि बढ़ियावाले आमके हाथको उन्होंने जान-बूझकर मोहन-केसूके सामनेसे हटाकर अपने बच्चे मदन-मटकूको वे आम दिये और मोहन-केसूको घटिया आमवाला हाथ उनकी ओर घुमाकर आम दिये। रामजीदासके बात ठीक समझमें आ गयी कि आज ई बिहारीलालके मनमें भेद-बुद्धि आ गयी। आम मामूली चीज है, -से पैसोंके हैं—इससे मतलब नहीं; असल बात है—भेद-बुद्धिकी।

लड़के तो आम लेकर चले गये। उन्हें तो घटिया-बढ़ियाका कोई ज्ञान था नहीं। अवश्य ही आज कुछ नयी-सी बात तो बच्चोंको लगी। मदन-मटकू समझ नहीं सके कि बाबूजीने—हम जो आम ले रहे थे, वे न देकर दूसरे क्यों दिये। इसी प्रकार मोहन-सोहनको भी कुछ अचरज-सा लगा। पर उन निर्दोष बच्चोंके मनमें किसी पाप-भावनाका ध्यान नहीं आया। किंतु रामजीदासके मनमें दूसरा भाव आ गया और बच्चोंके अलग चले जानेके बाद रामजीदासने आकर भाई बिहारीलालसे कहा—'भाईजी! हमें आजसे बँटवारा करके अलग-अलग हो जाना है और इसमें कोई भी कठिनाई नहीं होगी; क्योंकि आप अपनी इच्छासे मुझे जो कुछ देंगे, वही मुझे हृदयसे स्वीकार होगा।' रामजीदासकी बात सुनकर बिहारीलाल चौंके। उन्हें अपनी नीयतकी बात तो याद आ गयी; पर वे समझ रहे थे कि रामजीदासने क्यों मेरी ओर देखा होगा और क्यों इसे कोई संदेह ही हुआ होगा।' बिहारीलाल बोले—'भैया! क्या बात हो गयी, तुम ऐसा क्यों कह रहे हो?' रामजीदासने नम्रतासे स्पष्ट कहा—'भाईजी! आज एक ऐसी अनहोनी बात मैंने देखी, जिसकी मेरे मनमें कल्पना ही नहीं थी। बच्चोंको आम देनेके समय मेरी नजर इधर चली गयी। बात मामूली थी; पर मैंने समझ लिया कि आज भाईजीके मनमें अपने बच्चों तथा मेरे बच्चोंमें भेद आ गया। और जब भेद आ गया, तब फिर साथ रहनेमें कुशल नहीं है। इसीसे मैंने अलग होनेकी बात कही है।'

बिहारीलालकी आँखोंमें आँसू आ गये, उन्होंने कहा—'तुम्हारा

बात है, भैया ! मेरी बुद्धि मारी गयी थी; मैंने जो पाप कभी नहीं किया, वह आज कर बैठा ! मेरी बुद्धिमें भेद आ गया । मेरे मनने कहा—बढ़िया आम मदन-मटकूको दे दो । मैंने मनकी यह कुशिक्षा मान ली । भैया ! इसका दण्ड मुझे भगवान् देंगे । तुमसे क्षमा माँगने लायक तो मैं रहा नहीं । तुम तो मुझपर विश्वास करके अपने स्त्री-बच्चोंकी सारी देख-रेखका भार मुझे देकर निश्चिन्त हो गये थे । मैंने बुरी नीयतसे तुम्हारे साथ घोर विश्वासघात किया । यह छोटा पाप नहीं है । अवश्य ही अलग होनेपर मेरे प्राण भी देहसे अलग हो जायँगे । पर इस पापका तो यही प्रायश्चित्त है ।' यों कहकर बिहारीलाल जोर-जोरसे रोने लगे । बिहारीलालके सच्चे पश्चात्तापयुक्त आँसुओंकी धाराका रामजीदासके हृदयपर विलक्षण प्रभाव पड़ा । उसके मनका सारा क्षोभ बह गया । उसने बड़े भाईके पैर पकड़ लिये तथा रोकर क्षमा माँगी । इतनेमें बच्चे भी वहीं आ गये । वे आश्चर्यसे देख रहे थे—आज ताऊजी और चाचाजी रो क्यों रहे हैं ? बिहारीलालकी स्त्री वहाँ आ गयी । रामजीदासकी स्त्री भी दूर खड़ी होकर सब देखने-सुनने लगी । दोनों ही बड़ी भली स्त्रियाँ थीं । सब बातें जानकर दोनोंको बड़ा दुःख हुआ । वे भी रो पड़ीं । पवित्र आँसुओंने सदाके लिये मलिन भावोंका मूलोच्छेद ही कर दिया । सारा परिवार परम सुखी हो गया । यह बात सिद्ध हो गयी कि सुख त्यागमें है, स्वार्थमें नहीं ।

—गोविन्दराम शर्मा



मानवमें प्रकाशित देवत्व

आफिसमें आये हुए नये सज्जनकी ओर सबका ध्यान खिंच गया । लक्ष्मीशंकरने नये नियुक्त होकर आनेवाले सज्जनकी तरफ चश्मेमेंसे अपनी सूक्ष्म दृष्टि डालकर देखा और सामने बैठे हुए क्लार्क की ओर आँख मटकाकर कहा—'कोई कालेजसे निकला हुआ मालूम होता है ।'

लक्ष्मीशंकरने फिर मुसकराकर मेरी ओर देखा… ।

'हाँ, लगता तो ऐसा ही है ।'

फिर आफिसका कार्य यन्त्रकी तरह चलने लगा । मैं नवीन आगन्तुककी चेष्टा देखता रहता । वे बड़ी सन्निष्ठा तथा एकाग्रताके साथ अपना काम करते थे ।

कामकी भीड़में क्लर्कलोग तीखे वचन बोला करते थे । लक्ष्मीशंकरने तमाखू सूँघते हुए कहा—'आपको कौन-सा विभाग मिला है ?' लक्ष्मीशंकर हमारी आफिसमें बड़े चालाक-चुस्त आदमी समझे जाते थे ।

'आने-जानेका और तकावीका ।' नये सज्जनने संक्षिप्त उत्तर दिया । 'यह तो फजूल-सा है '—और हम सभी लोग ठहाका मार कर हँस पड़े !

नये सज्जन कुछ क्षण भाई लक्ष्मीशंकरकी ओर देखते रहे। उनके मुखपरकी सौम्य रेखाओंको देखकर मुझे लगा कि यह आदमी किसी जुदी ही मिट्टीसे बना हुआ है।

आफिसका काम चालू होनेपर एक दलाल आया। इसने नवीन सज्जनसे दस्तावेजका कागज देनेको कहा और दो रुपये मेजपर रख दिये। फिर दस्तावेज लेकर वह जाने लगा।

'बाबू! ये आपके रुपये यहाँ पड़े रह गये। नये सज्जनने कहा! 'यह तो आप समझ लीजिये न चाय-पानीके………।' दलालने महज हँसकर उत्तर दिया।

'परंतु मैं चाय नहीं पीता और पैसे नहीं लेता।' उन्होंने कहा।

लक्ष्मीशंकर और हम सभी लोग उनके मुँहकी ओर देखते रह गये। 'यह निरा बुद्धू मालूम होता है।' क्लर्कोंमेंसे एकने धीरेसे कहा।

'भाई! मालदार होगा, यह तो सबकी रोटी मारेगा।' दूसरेने कटाक्ष किया। दूसरे दिन गाँवोंके किसान तकावीके रुपये लेने आये। एक किसानके चार सौ रुपये मंजूर हुए थे। उसे रुपये गिना दिये गये। उस किसानने एक दस रुपयेका नोट रख दिया।

'भाई! यह नोट किसलिये रक्खा?' नये अफसरने कहा।

'यह तो साहेब! सभी लेते हैं। यह तो रिवाज ही हो गया है।' किसानने कहा।

'सब लोग जो चाहें सो करें, तुम थोड़ी देर मेरे पास बैठो।' यों कहकर नवीन सज्जनने कागजपर कुछ लिखा और उसे लेकर वे साहबके पास उनके कमरेमें चले गये।

'साहेब ! मुझसे यह नौकरी नहीं होगी। यह लीजिये त्यागपत्र।'

साहेबको तथा हम सभीको एक जोरका धक्का-सा लगा। इस बेकारीके जमानेमें रेवन्यू विभागकी बढ़िया नौकरीपर ठोकर मार देनेवाले इस आदर्शके पीछे पागल नौजवानकी विशेष बातें सुननेके लिये मानो हमारे श्वास रुक-से गये। साहेब तो त्यागपत्रका कागज दोनों हाथोंमें पकड़े कठपुतलीकी तरह स्तब्ध रह गये।

उन नवीन सज्जनने कहा—'साहेब ! बिना मेहनतकी एक पाई भी मैं नहीं ले सकता और इस बर्तावसे मुझे आफिसमें सबका अप्रिय हो जाना पड़ेगा। इससे अच्छा यही है कि मैं किसी दूसरी जगह कहीं अध्यापकका या वैसा ही कोई काम ढूँढ़ लूँ और राष्ट्रका ऋण चुकानेकी चेष्टा करूँ।' इतना कहकर वे साहबके कमरेसे बाहर निकल आये। आफिसमें पंक्तिबद्ध टेबलें रखकर कुर्सियोंपर बैठे हुए क्लर्कोंकी ओर देखकर वे मधुर-मधुर मुसकरा दिये। मोतीके स्फटिक मुक्ता-सदृश उनकी उज्ज्वल दन्तावली और सौम्य व्यक्तित्वने हम सबपर मानो एक प्रकारका जादू फैला दिया। सबको नमस्कार करके वे चलते बने।

—रामशंकर ना० भट्ट